



सत्यम् भारत प्रथावतो नं० ३३

महाकवि नन्ददाम-प्रणीत

# रासपंचाध्यायी

प्रार

## भँवरगीत

गायक

बदधनारायण त्रिपाठी, एम० ए०, गार्हाबाबा

प्रकाशक

नरसी चरण प्रेस, दारुवाणक प्रयाग

२१६/११ )

१९०५/१३/११०

[ २०३१ ] ६०



## प्रकाशक का वक्तव्य

महाराजि नन्ददास जी की रासपचाध्यायी और भँवरगीत, सुसम्पादित रूप में, प्रकाशित करने की बहुत दिन में हमारी इच्छा थी। इतने में पंडित जगहरलाल जी चतुर्वेदी अपनी सम्पादित की हुई रासपचाध्यायी की पाठ्यलिपि हमारे पास लाये, और गत वर्ष उक्त चतुर्वेदी जी के निरीक्षण में उसका छपना भी शुरू हो गया, परन्तु कारण विशेष से चतुर्वेदी जी के द्वारा सम्पादित काय पृथक् रूप से प्रकाशित नहीं सना, और पुस्तक लगभग एक वर्ष से अधिक समय तक प्रेम में ही पटी रही।

अन्तु। प्रस्तुत प्रकाशन में “रासपचाध्यायी” मूल और “राम सम्बन्धी कुछ पद” चतुर्वेदी जी के सम्पादित किये हुए हैं, इसके लिए हम आपके बड़े कृतज्ञ हैं। शेष सम्पादकाय हिन्दी के उदीयमान लेखक और साहित्यमन्त्र पंडित उदयगारायण जी तिमारी ने किया है। आपने कितने परिश्रम और योग्यतापूर्वक यह काय किया है, सो रसिक और निष्ठ पाठक स्वयं जान लेंगे।

आशा है कि हिन्दी के प्राचीन साहित्य तथा काव्य के अनुरागियों—और विशेषकर निश्चार्थ और उच्च साहित्य के परीक्षार्थी वर्ग—के लिए यह ग्रन्थ विशेष रूप से लाभदायक और उपयोगी सिद्ध होगा।



## प्रस्तावना

‘रास-पचाध्यायी’ तथा ‘भँवर-नाति’ के रचयिता राज सोनिल नन्ददास के जीवन-चरित्र से अभी तक हिन्दी-संसार एक प्रभाग में अग्ररचित है। आपका जन्म सम्पत्, यश परिचय, जीवन-चरित्र इत्यादि गाथा पर अभी तक सम्यक् प्रकाश नहा डाला जा सका। सच तो यह है कि ग्रन्थ भक्त-कृतियाँ की नाति नन्ददास ने भी अपने सर्व मं अग्ररचित ग्रन्था मं कुछ भी नहा लिया। फिर भी कहा करी आप के सर्व मं उल्लेख अवश्य मिलते हैं। इन्हा उल्लेखा तथा अब तक प्राप्त सामग्री के आधार पर नन्ददास जी के जीवन-चरित्र के मन्ध में बहा कुछ लिखा जायगा।

नाभादासकृत भक्तमाल म ‘नन्ददास’ के सर्व मं केवल निम्न लिखित छाप्य मिलता है —

लीला पद रम रीति ग्रन्थ रचना में नागर । /

सरस उक्तिश्रुत श्रुति भक्ति रमगान उजागर ।

द्रचुर पयध लौमुजम “रामएर” ग्राम त्रिगामी ।

समल सुकुन मन्त्रलित भक्त पद रेनु उपासी ।

चन्द्रहाम श्रमज मुन्, परम प्रेम पै मे पने । - ।

(श्री) नन्ददास आनन्द निधि, रमिक मु प्रमुहित रँगमगे ।

श्री भ्रुनदास जी ने ‘भ्रुन सन्त्र’ में आप के यश का वर्णन करने हुए इस प्रकार लिखा है —

नन्ददास जो कुछ बड्यो, राग रग में पाणि । /

श्रद्धर सरस-सनेह-युत, मुनत मुमन उठि जागि ॥

रसिक दशा अद्भुत हुती, करत कवित्त सुन्दार ॥  
 यात प्रेम की सुनत ही, छुटै नैन-जल धार ॥  
 बोरो सो रस मैं फिरै, योजत नैहिन बात ॥  
 आछे रस के वचन सुनि, बैगि बिप्रस हई जात ॥

‘मूल गोसाई-चरित’ के रचयिता श्रीवेणीमाधवदास ने आपकी कान्यकुब्ज, ‘शेषमनातन’ का शिष्य तथा गोस्वामी तुलसीदास की का गुरुभाइ लिखा है —

नन्ददाम कनौजिया प्रेम मढे । जिन शेषमनातन तीर पढे ।  
 सिख्यो गुरुपुत्र भये तेहि ते । अति प्रेम सो आगमिन्हें चहि ते ।

गौरधननाथ जी की ‘प्राकृत्य की वात्ता’ में नन्ददास के सन्ध में यह उल्लेख मिलता है कि श्रीनाथ जी की सेपिक ‘रूप मजरी’ से आप की मित्रता थी और उसी के लिए आपने रूप मजरी नामक ग्रन्थ लिखा ।

स्वर्गाय रावू गथाकृष्णदास द्वारा सम्पादित ‘रासपनाथगरी’ की भूमिका में ‘दा. सौ रावन वैष्णवा की वात्ता’ से लेकर नन्ददास के सन्ध में निम्नलिखित वृत्तान्त प्रकाशित किया गया है —

“नन्ददास सनाथिया गङ्गागु तुलसीदास के छोटे भाइ पूव देश के रहनेवाले थे । ये दोनों भाइ रामानन्द जी के शिष्य थे । नन्ददास की विपनामक भी बहुत थे । नाच-तमाशे में यशस्व पहुँचते थे । एक समय कुछ लोग श्रीराछोड जी ( द्वारिका ) दर्शन को जात थे, उनके साथ ये भी तुलसीदास से यात्रा करके दर्शन के लिए चले । मथुरा की पहुँचकर वना की शोभा देख, मन खुभा गया और यह निश्चय कर कि मथुरा द्वारिका की दर्शन कर नहीं लोट जावे और कुछ दिन यहीं गान-ट में बिताय साथवाला का साथ छोड़ प्रकले आगे गढे, परतु गस्ता भूलकर ‘सिहनद’ में जा पहुँचे । वहाँ एक सत्री की यह अपने घर के मरजा में सनी गल सुरा ग्ही थी । उसका रूप देग य मोहित हो

गये। एक स्थान पर उसा करके किसी प्रकार रात काटी। सवेरे फिर बर्ती पहुँचे, पर उसको न देखा। दिन भर वहाँ अट्टे, गड्डे रहे। सन्धा को उस धर की एक तीली न इन्ना अन्न जल गड्डे रहने का कारण पूछा। नन्ददास ने कहा कि तुम्हारी यह के दशन क लिए मेरी यह दशा है। लाठी ने जाकर उसमें कहा और बहुत समझाया, तब वह सारजे में आइ और नन्ददास देकर चले गये। या ही गिन्य जाते और उसे देकर लोट आत। शने होते यह रात मारे नगर म प्रसिद्ध हो गई। उस स्त्री के घरवाला न बहुत दुःख गेना टोका, पर नन्ददास ने एक न माना और कहा कि बहुत दुःख गेगे, तो म प्राण ले दूँगा, तुम्हें ब्रह्म हत्या लगेगी। हार कर उन लोगो ने निश्चय किया कि अब इस स्थान को छोड श्रीगोकुल म चल रहना ही शीर है, सा गाडी कर बेदा-बहु और लाठी तथा दो नौकर त गतारात वे लोग चुनचाप नगर छोडकर चल दिए। मगर नन्ददास ने आकर घर म ताला बन्द देना, तब पता लगा। ये भी गोकुल की आर चत पने और गन्ते गे म उन लोगो से जा मिल आर उन लोगो क लटने भिडने पर भी दूर दूर पीछे लगे चले। श्रीगोकुल के इस पार पहुँच, ब लाग तो नाच पर पार उतर श्रीगोकुल म गोकुलमी शशिष्ठनाथ जी क पास चले गये। नन्ददास जा इसी पार बैठे रहे आर शीयमुना जी का शक्ति करत रहे ( 'नेहकारन तमुने प्रथम आइ' शक्ति )। श्रीगोमार्द जी ने राग भाग पीछे इन लोगो के प्रमाद लेने के लिए चार पत्तल धर्य है, तब इन्हान गिनता की कि हम लोग तो तीरा नी जन हैं, चार पत्ता गिनती हैं। श्रीगोमार्द जी ने कहा कि तिस एक वैष्णव को तुम लोग उस पार छोड आय हो, यह उमकी पत्तल है। यह मुन के लोग पहुँचे रातिगत हुए, तब श्रीगोमार्द जी ने कहा कि तुम लोग धरझात्रो मत। पर यह हुद न गनागगा। और अपने एक नैकर को भेजकर नन्ददास जी को जुलबासा। नन्ददास जी की आसों श्रीगोमार्द जी के दर्शन करत ही खुल गई और चरणा पर गिर गिनती की, कि महाराज ! मैं राज श्रेष्ठ हूँ। सारा जन्म



निषयवासा में प्रिताया । अब आप अपने शरण में गय, मेरा उद्धार कीजिए । श्रीगुमाई जी ने श्रीयमुना रानन जगने इन्ट इण्ड मत्र दिया, तब इनके दिव्य चतु खुल गय और श्रीगुमाई जी उ दना म पद बताया ( 'जयांत हस्तिमिताय पद्मावती प्राण्यती मिप्रकुच मिप्र अभिन्दकारी' आदि ) । फिर महाप्रसाद राने जा बैठे, ता लीला का जो अनुभव हुआ, तो सारी रात बैठे गये । पत्तल ने न उठे । मनेर श्रीगुमाई जी न आकर रहा—'नन्ददास, उठो, दशन का समय हुआ ।' तब उठे और श्रीगुमाई जी की प्रन्दना का ( प्रात ममय श्रीरत्नभमुना का उठतहि रमना लीनिण नाम' आदि ) । तब से दशन का प्रानन्द लेते और भगवद्-गुणाजुवाद म लगे गते । तुलसीदास जी ने यह समाचार सुन, नन्ददास की जो पत्र लिखा । तब इन्होंने उत्तर दिया कि मैं क्या करूँ, आपने तो मरा विवाह श्रीरामचन्द्र जा से कर दिया था, पर बीच में जयरदम्नी श्रीकृष्ण ने आकर लूट लिया । अब तो सम्व उनके अर्पण कर चुका । नन्ददास जी ने रामप्र दशम स्कध भागवत की लीला छन्दोपद भाषा म की थी । उमे देख मथुग के तथा उदनेमाले ब्राह्मणों ने आकर श्रीगुमाई जी से प्रिनती की कि इस ग्रन्थ से हम लोगों की जीविता मारी जायगी । तब श्रीगुमाई जी की आत्मा से 'ससपचाध्याग' मात्र ग्यरर और सत्र ग्रन्थ श्रीयमुना जी में पधरा दिया । एक दिन तानसेन ने नन्ददास का बनाया 'ससलीला' का पद ( देखो देखो री नागर नट तित्तत मालिन्दी तट आदि ) अकरर के मामने गाया । अकरर ने नन्ददास को बुलाया और पूछा कि आपने इस पद म गाया है कि 'नन्ददास गावै तहाँ निपट निमट' सो आप तैरो निपट निमट पहुँचे ? नन्ददास जी ने कहा कि इसका भेद अपनी प्रमुक्त लौंडी से पूछो । गदशाह ने महल में जाकर उस लौंडी से पूछा । वह लौंडी परम वैष्णवा थी और उसे श्रीनाथ जी के दर्शन होते थे, तथा उससे नन्ददास जी ने बडा मोह था । आदशाह की बात सुनते ही वह मूर्छित होकर गिरी और शरीर छोड़ दिया । इधर नन्ददास जी ने भी शरीर छोड़ दिया ।

गदशाह यह चरित्र देख सन्न हो गया। श्रीगुमाई जी ने जब यह समाचार सुना, तब भी सगन्ना थी।”

गार्गी दत्तात्री ने अपने दिदा मातुल्य के इतिहास\* में नन्ददास के सन्ध म निम्नलिखित विवरण दिया है —

“गीत-गोविन्द क टंक पर नन्ददास ने ‘पञ्चाध्यायी’ (रासपना ध्यायी) की रचना की है। इसमें राधाङ्गण की प्रम-लीला की ही प्रधानता है। मदनपात द्वारा सम्पादित पञ्चाध्यायी का एक सन्स्करण मानसम क लीथो प्रम, फलरत्ना से प्रकाशित हुआ है। इसमें पृष्ठ ५८ पृष्ठ हैं।”

म० १६६० म ‘मुक्ति-सरोज’ नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। इसमें मनाढ्य जाति के मादित्यमैत्रिया का पवित्र्य और उनकी कर्मिता के उदाहरण दिए गए हैं। इसमें ‘रामचरित मानस’ के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास तथा नन्ददास भाइ भाइ एवं सनाढ्य ग्राहण माने गए हैं। इसके अनुसार नन्ददास का जन्म सन् १५६४ के लगभग सोरो जिला एटा के समीपस्थ रामपुर नगर में हुआ था। नन्ददास के पिता रामपुर से इटावा जिला के योगमाग मुहल्ले म रहने लगे। गत म नन्ददास ने धन सम्पन्न हाकर रामपुर की फिर से प्राप्त किया और उसका नाम बदल कर श्यामपुर रख दिया। नन्ददास के पुत्र का नाम कृष्णदास था और वह अपने चाचा तुलसीदास की बुलाने राजापुर गया, किन्तु वे आए नदा।

‘भक्तमाल’ की रचना सन् १६७२ के बाद नाभादास जी ने की थी। इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता के सन्ध म अत्र तब किमी विद्वान् ने जोड़ आक्षेप नहीं किया है। इसके अतिरिक्त नन्ददास के समकालीन होने के कारण इस ग्रन्थ में दी हुई बात अपेक्षाकृत अधिक मूल्यवान्

\*“इस्वार दत्ता लिनस्वोर इदुह ए इदुस्तानी,” प्रथम सत्करण, पृष्ठ ३८७-३८८।

हैं। ऊपर 'भक्तमाल' से जो छुप्य उद्धृत किया गया है, उमसे नन्ददास की जीवनी सबधी निम्नलिखित तीन बातें ज्ञात होती हैं — ( १ ) 'नन्ददाम गमपुर गाव के रहनेवाले थे, ( २ ) यह उच्चकुल ( अथवा सुकुल आत्मद ) के थे, और ( ३ ) चन्द्रहास इनके बड़े भाई थे, या ये चन्द्रहास के बड़े भाई थे, अथवा ये चन्द्रहास के बड़े भाई के मित्र थे।

श्री मुनदास जी के दोहा से ( जो ऊपर उद्धृत किये जा चुके हैं ) केवल इतना ही परिलक्षित होता है कि नन्ददास एक सुकवि थे तथा प्रेम की चचा मुनकर पुलकित हो उठते थे।

'मूल गोसाईंचरित' तथा 'दो सौ रावन वैष्णवों की राता' में, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, नन्ददाम जी को गोस्वामी तुलसीदास

नन्ददाम और  
तुलसीदास

का भाई मतलाया गया है। इन्हीं ग्रन्थों की प्रामाणिकता के आधार पर सुकवि सरोजकाव तथा अन्य छे लेखकों ने नन्ददास को तुलसीदास का भाई

लिखा है। किन्तु अनुमान से 'मूल गोसाईंचरित' तथा 'दो सौ रावन वैष्णवों की राता' दोनों श्लेषक ग्रन्थ प्रतीत होते हैं। मूल गोसाईंचरित की ऐतिहासिकता पर विचार करते हुए श्री माताप्रसाद गुप्त एम० ए० ने अपने 'तुलसी-मन्दन' नामक पुस्तक के २३वें पृष्ठ पर लिखा है —

"वैष्णोमाधवदास लिखते हैं कि मीन की सनीचरी के उतरते ही ( मीन की सनीचरी का ग्रन्थ १६५२ वि० के ज्येष्ठ में हुआ था ) काशी में मरी का प्रसंग हुआ। उसे गोसाईं जी ने भगवान में विनय करके भगा दिया। मरी के पीछे ही केशवदास गोस्वामी जी के दर्शनार्थ आए और एक ही रात्रि में उन्होंने गमचन्द्रिका पेशे पड़े काव्यग्रन्थ की रचना कर डाली। इस प्रकार 'मूल गोसाईंचरित' के अनुसार जान पड़ता है, गमचन्द्रिका की रचना सन् १६४३ के लगभग हुई है, किन्तु यह पितान्त अशुद्ध है, क्योंकि उक्त ग्रन्थ में ही स्पष्ट शब्दों में लिखा हुआ है कि उसकी रचना सन् १६५२ में मार्चिष सुदी १२ उपचार

को समाप्त हुई, इन्ने इन्द्रजीतसिंह ने बनवाया था। अतएव 'मूल गोसाईं चरित' का उल्लेख इस विषय में अत्यन्त अपूर्ण जान पड़ता है।"

'मूल गोसाईं चरित' की ऐतिहासिकता पर विचार करने का एक और दृग्ग है। यह है उनके व्याकरण के दांचे का अध्ययन। इस प्रकार के अध्ययन से उसके काल निर्णय में अमूल्य सहायता मिलनी, किन्तु अज्ञानभाव में क्या इस बात का प्रयत्न न किया जा सकेगा। मेरा तो इस ग्रन्थ के विषय में यही अनुमान है कि गोस्वामी जी की मृत्यु के बहुत दिनों पश्चात् इसका निमाण हुआ और उसके रचना ने तुलसीदास जी के मरण में उस समय तक प्रचलित मम्मत् हिन्दुत्व का समावेश इसमें अत्यन्त चतुरता के साथ कर दिया है।

इसी प्रकार 'दो सौ बावन वैष्णवा की वात्ता' की ऐतिहासिक प्रामाणिकता पर डाक्टर धीरेन्द्र वमा एम० ए० का एक बहुत ही गौरवर्धित लेख 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में अप्रेल १९३० में प्रकाशित हुआ है। उसका शीर्षक है—“क्या 'दो सौ बावन वैष्णवा की वात्ता' गोकुलगाथ कृत है?” उस लेख में डाक्टर साहब लिखते हैं—“अब मैं एक ऐसा प्रमाण देना चाहता हूँ, जो व्यापक रूप से समस्त ग्रन्थ पर लागू होता है और जिससे स्पष्ट रीति में यह सिद्ध हो जाता है कि ८४ वात्ता तथा २५२ वात्ता के रचयिता दो भिन्न भिन्न व्यक्ति थे और २५२ वात्ता निश्चित रूप से माहर्षी शतान्धरी का बाद की रचना है। 'ब्रजभाषा का विज्ञान' शीर्षक लेखन ग्रन्थ की सामग्री जमा करते समय मैंने चाणसी तथा दो सौ बावन वात्ताओं के व्याकरण के दांचों का भी अध्ययन किया था। इस अध्ययन में मुझे यह बात आश्चर्यजनक मालूम हुई कि इन दोनों वात्ताओं के व्याकरण के अनेक रूपों में बहुत अन्तर है।”

इसके बाद व्याकरण के रूप तथा वात्ता की तुलना करने हुए चर्मा जी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि दो सौ बावन वात्ता गोकुलगाथ

कृत नहीं हो सकती। कदाचित् चौरासी वार्ता के अनुकरण में सत्रहवीं शताब्दी के बाद किसी वैष्णव भक्त ने इसकी रचना की होगी।

वाता की प्रामाणिकता पर दूसरे टँग में विचार करते हुए हिन्दी के विद्वान् आलाचन तथा इतिहास-लेखक पंडित रामचन्द्र शुक्ल भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। आप अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में लिखते हैं—

“गोस्वामी जी का नन्ददाम जी से कोई सम्बन्ध न था, यह बात पृथक्था सिद्ध हो चुकी है। अतः उक्त वार्ता की बातों को, जो वास्तव में भक्ता का गौरव प्रचलित करने और बल्लभाचार्य की गद्दी की महिमा प्रकट करने के लिए पीछे स लिखी गई है, प्रमाण कोटि में नहा ले सकते हैं।”

ऊपर वार्ता की प्रामाणिकता के विषय में विज्ञा जा चुका। अब यह बात स्पष्ट हो जाती है कि केवल साम्प्रदायिक गौरव को स्थापित करने के लिए वाता में तुलसीदास से नन्ददास जी के भाई होने का संबंध जोड़ा गया है, पर वास्तव में नन्ददास जी का तुलसीदास जी के साथ कोई संबंध नहीं था। ऐसा मान पड़ता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी की अत्यधिक प्रतिष्ठा-संबुद्धि होने देकर पीछे से किसी वैष्णव भक्त ने उनका नन्ददास जी के साथ इस प्रकार का संबंध जोड़ दिया है।

अतः। अत्र तत्र उपलब्ध सामग्री के आधार पर नन्ददास के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि गोमार्द विद्वलनाथ का शिष्यत्व ग्रहण करने के पूर्व आपका जीवन वासनात्मक था। किन्तु इसके बाद तो वे वृष्णप्रेम की ओर इतने आकृष्ट हुए कि उनकी गणना अष्टधर\* में होने लगी। आप ‘रामपुर’ गाँव के रहनेवाले उद्यकुल (अथवा मुकुल

\* अष्टधर के अन्तर्गत निम्नलिखित भक्त कवियों के नाम आते हैं—

( १ ) श्रीसूरदास, ( २ ) श्रीकृष्णदास, ( ३ ) श्रीपरमानन्ददास,  
( ४ ) श्रीकुम्भदास, ( ५ ) श्रीचतुर्भुजदास, ( ६ ) श्रीनन्ददास, ( ७ )  
श्रीगोविन्द स्वामी ( ८ ) श्रीदीन स्वामी।

इनमें से प्रथम चार श्रीवल्लभाचार्य के तथा शेष चार श्रीविद्वलनाथ जी के शिष्य थे।

आनन्द ) के थे, और आपके भ्राता का नाम चन्द्रगम या अथवा आप चन्द्रगम के बड़े भाई के मित्र थे । पुष्पिमागय की बात के पश्चात् आप श्रीनाथ जी का पैसा खर्च हुआ गोवर्धन तथा गोकुल में रहने लगे । श्रीनाथ जी की सेविता रूप मञ्जरी से आप का मित्रता थी । आप गोसाईं विद्वन्नाथ तथा सुन्दान के समकालीन थे अतएव इनके का के सम्बन्ध में हम इतना ही कह सकते हैं कि ये १६ वां शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वर्तमान थे ।

नन्ददास जी ने कुन कितने ग्रन्थ लिखे हैं, हम विषय में अभी तक पूरा पूरा पता नही चला है । अतएव जो ग्योच हुए हैं उन्हीं के आधार पर नन्ददास की परबरा कुल्य निम्न बात है । काशी नागरी प्रचारिणी सचिवायें सभ, द्वारा प्रकाशित खोज की रिपोर्टों में आप के निम्न लिखित १५ ग्रन्थों का पता लगता है —

- ( १ ) 'ग्रोकार्य मञ्जरी'
- ( २ ) 'गाममाला'
- ( ३ ) 'नातिकेनपुराण भाषा'
- ( ४ ) 'दशमन्त्र'
- ( ५ ) 'पचायाइ'
- ( ६ ) 'भैरवगीत'
- ( ७ ) 'भागवत'
- ( ८ ) 'मानमञ्जरी'
- ( ९ ) 'राममञ्जरी'
- ( १० ) 'रूपमञ्जरी'
- ( ११ ) 'त्रिरहमञ्जरी'
- ( १२ ) नाम चिंतामणिमाला'
- ( १३ ) 'जोगलीना'
- ( १४ ) 'श्याम-मगाइ', और
- ( १५ ) 'दक्षिमी-मगल'

‘गामी द तामी’ ने अपने ग्रन्थ में नन्ददास के केवल चौदह ग्रन्थों के नाम ग्राम प्रियङ्गु दिए हैं। इनमें से दस तो खोज रियोटों वाले १, २, ४, ५, ६, ८, ९, १०, १३ व १५ न० के ग्रन्थ हैं। तिन चार ग्राम नए ग्रन्थों का उल्लेख तामी ने किया है उनके नाम नीचे दिए जाते हैं —

- ( १ ) ‘मुदामाचरित्त’
- ( २ ) ‘प्रसाध चट्टोदय नाटक’
- ( ३ ) ‘गोरधनलीला’
- ( ४ ) ‘ससमजरी’

खोज के ग्रन्थ न० ३, ७, ११, १२ तथा १४ के नाम तामी की पुस्तक में मोचूद नहा है। ठाकुर शिवमिह ने अपने ‘सरोज’ में नन्ददास के सात ग्रन्थों का नाम दिए हैं। इनमें से ऊपर दिए गए ग्रन्थों के अतिरिक्त दो और नए ग्रन्थ ‘दानलीला’ तथा ‘मानलीला’ के नाम मिलते हैं। उसी प्रकार ‘मिश्रत्रयु पिनोद’ में भी नन्ददास के दो और नवीन ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। इनके नाम ‘जानमजरी’ और ‘विजानार्थ प्रकाशिका’ हैं। ‘विजानार्थ प्रकाशिका’ संस्कृत ग्रन्थ की ब्रजभाषा टीका बतलाइ गई है। ‘सुप्रति-सरोज’ के संपादक ने नन्ददास के एक और नवीन ग्रन्थ ‘हितोपदेश’ का उल्लेख किया है।

इस प्रकार नन्ददास द्वारा रचित कुल चौबीस ग्रन्थों का पता लगता है। किन्तु खोज से पता चला है कि इनमें से ‘नाममाला’, ‘नाम चिन्तामणि माला’ तथा ‘मानमजरी’ ये तीन भिन्न भिन्न पुस्तकें नहीं हैं, किन्तु वास्तव में एक ही पुस्तक के ये तीन भिन्न भिन्न नाम हैं। नन्ददास की एक नवीन रचना ‘सिद्धान्त-पंचाध्यायी’ की हस्तलिखित प्रति का भी पता चला है। अस्तु। एक नामवाले दो ग्रन्थों को निभाल देने से तथा ‘सिद्धान्त-पंचाध्यायी’ को भी सम्मिलित कर लेने से नन्ददास द्वारा विगृहित कुल तेइस ग्रन्थ होते हैं। इन ग्रन्थ-सूचियों में

ने अत्र तत्र 'अनेकाय मन्त्रा', 'नाम माला', 'गण-पञ्चायायी', 'भैरव गीत', 'रुक्मिणी मंगल' और 'न्याम मगाड' ये छंद ग्रन्थ मद्रित हो चुके हैं।

जिसी त्रिं न मानसि पिनास एव उमरी नावफला के प्रयत्न के लिए उमरी रचनाया का कालक्रम न अनुसार ग्रन्थया सतपचाध्यायी ग्रन्थयक होता है, किंतु अत्र तत्र उपलब्ध सामग्री की रचना के के आधार पर नन्ददास की रचनाया का कालक्रम कारण चानाने म हम सफल तत्र ही पक। इस प्रकार क चन क अभाव म यह निश्चित रूप म नहा पदा ना मरगा कि पचाध्यायी की रचना कर हुई। किंतु इस ग्रन्थ क आरम्भ म ही त्रिं ने उमरी रचना के सप्रध में एक कारण दिया है —

परम रभिव इक मित्र मोहि तिन आग्या दानी ।

ताही तै यह कथा जया मति नाया कौनी ॥

नन्ददास जी का तत्र मित्र कोन था ? यह नहीं 'चन्द्रदास' के पड़े भाइ तो नहा थे ? कुछ लोगों का अनुमान है कि पिछलनाम की दो शिष्या 'गगाया' तथा नन्ददास जी म घनिष्ठ मैत्री की आर उहीं के रहने पर उन्होंने सतपचायायी की रचना की। कबल अनुमान तथा कल्पना पर ही प्रबलभित होने से इसका सप्रध म निश्चितरूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

पचायायी के प्रथम अध्याय के आरम्भ म ससार दुग्गा से मतत प्राणिया के लिए श्रीमद्भागवत का प्रगट करने वाले कुरुणासागर श्रीशुकदेव जी के नए गिर्य का वर्णन है। तत्पश्चात् रामपचाध्यायी का कथानक कवि ने वृंदावन का एक अत्यन्त यादश तथा रमणीक वन के रूप म वर्णन करते हुए विविध आभूषणा से प्रलङ्कित किशोर श्रीकृष्णचन्द्र के सौन्दर्य को अङ्कित किया है। इसके बाद ही शरद-रजनी तथा चन्द्रोदय का वर्णन नितात स्वाभाविक ढंग से किया गया है। इसी समय चराचर का



मोहने वाली क्राण की मुगली राज उठती है। फलतः सभी राजगोपिकार्ये आकृष्ट होकर रास करने के लिए आ पहुँचती हैं। बदा पर क्राण का दर्शन करके प्रेम में पग जाती हैं। इसी अग्रसर पर रमिन्गिरोमणि श्रीकृष्ण जी गोपियों को श्रिया का धम तथा स्तय समझाने लगते हैं। प्रम, इम प्रकवचन के सुनते ही गोपिया का दु रा तागर उमड पडता है। वहाँ पर कपि ने गोपियों की रशा का रडा ही मार्मिक चित्रण किया है। वे सभी कृष्ण ने अनुनय भिनय करती हैं, सभी उपालम्भ देती हैं और सभी 'असामृत' के न मिलने पर 'भिरह पावन' में जल भरने का धमकी देती हैं। अन्त में, 'नयनीत' के समान कृष्ण का सोमल हृदय पित्रल उठता है और वे गोपिया की रात मानकर कुज में विहार करते हैं।

रासक्रीडा में कृष्ण को मग देखकर तथा अरुडा सुअग्रसर जानकर ब्रह्माडिक को परानित करने वाला अनङ्ग आ पहुँचता है, किन्तु कृष्ण नुरन्त ही मग्न का मान भर्दन कर देते हैं। ऐसा अद्रुत मार्ग करने वाले कृष्ण से मिलकर गोपिया को किञ्चित् अभिमान आ जाता है। यह देखकर नट नागर कुड देर के लिये अन्तर्हित हो जाते हैं। यहा पन्वाध्यायो का प्रथम अध्याय समाप्त होता है।

'रास-पन्वाध्यायी' के द्वितीय अध्याय का नाम श्रीमद्रागवतकार ने 'कृष्णान्वेषण' बहुत ही उपयुक्त रखा है। यह अध्याय मिप्रलम्भ शृङ्गार का एक अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें कुज-कुज में लता-वृक्षों से कृष्ण का पता पृच्छती हुई गोपियों का चित्रण किया गया है। यह वर्णन सरस, हृदय द्रावक तथा करुणरस से ओत प्रोत है।

तृतीय अध्याय में कपि ने गोपियों की न्याकुलता का रडा ही कलापूर्ण चित्र रखा है। वे बारम्बार कृष्ण से दर्शन देने के लिये प्रार्थना करती हुई प्रलाप करती हैं। स्थान-स्थान पर गोपिया का व्यग बहुत ही सुन्दर है।

चतुर्थ अध्याय में श्रीकृष्ण के पुनः प्रसन्न होने का वर्णन है। गोपियों परम उत्सुकता एवं उमंग के साथ उनसे मिलती हैं और अत्यन्त प्रसन्न होती हैं। इसका चित्रण स्वाभाविक तथा मनमोहक है। मुसनाती हुई गोपियों श्रीकृष्ण से अगपूरक पृच्छती हैं कि आप इतना मूढ क्या देते हैं ? तब श्रीकृष्णजी अपने को गोपिया का परम श्रेणी बतलाते हैं और अपने इस प्रकार के व्यवहार को लिये उनमें क्षमा याचना करते हैं।

पञ्चाध्यायी के पाँचवें अध्याय में कवि ने कृष्ण की रामलीला का प्रथम ही मनोरम चित्र ग्याचा है। वर्णन इतना मजीब है कि राम का दृश्य नेत्रों में सम्मुख उपस्थित हो जाता है। आगे चल कर यह गल लीला जलमंजरी में परिणत हो जाती है और इसके पश्चात् प्रातःकाल के पूर्व 'ब्राह्म मुहूर्त' में गोपिया अपने अपने घर प्रस्थान करती हैं। अन्त में 'फलस्तुति वरणा' के साथ-साथ इन ग्रंथ की समाप्ति होती है।

नन्ददास-कृत रामचर्याध्यायी के रचनाकार का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध का पृथक्-अध्याय अन्ततः से लेकर अध्याय रामचर्याध्यायी तैत्तिरीय तक है। श्रीमद्भागवत के राम-सम्बन्धी ये पाँच के कथानक का आधार अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। नन्ददास जी की पञ्चाधार अध्यायी का विषय एवं क्रम भी मर्यादा श्रीमद्भागवत के अनुसार है और कहा इतक पद भागवत के श्लोकों में बहुत मिलते हैं। इस विषय पर आगे पूर्णतया विचार किया जायगा।

रामचर्याध्यायी का दूसरा आधार हरिवंश पुराण माना जाता, क्योंकि उस पुराण के विष्णुपर्व में उम्मी राम का वर्णन है जिसका वर्णन नन्ददास जी ने अपनी पञ्चाध्यायी में किया है। पुराण में उसका नाम "हल्लीस नाहन" दिया गया है। इसी राम के आधार पर हम रामचर्याध्यायी की हरिवंश पुराण का श्रेणी मान सकते हैं।

पञ्चाध्यायी का तृतीय आधार जयदेव का 'गीतगोविन्द' कहा जाता है। यद्यपि गीतगोविन्द और रामपञ्चाध्यायी के रचयिताओं में आकाश-पाताल का अन्तर है, तथापि दोनों की प्रवाह-गति, मधुरता और शैली एक ही साँचे में ढली हुई है। नन्ददास जी ने कदाचित् गीतगोविन्द के माधुर्य के दर्शाभूत होकर ही अपने काव्य की रचना की है। दोनों की मधुरता का ढंग एक ही है।

ऊपर हम रामपञ्चाध्यायी के रचयिताओं के आधार पर विचार कर चुके हैं। अब यहाँ इस बात पर विचार करना है कि पञ्चाध्यायी रामपञ्चाध्यायी श्रीमद्भागवत पर कहा तक प्रयत्नशील है। इस बात तथा जो निश्चित रूप में कहना अत्यन्त कठिन है कि श्रीमद्भागवत पञ्चाध्यायी की रचना में नन्ददास ने 'हरिश्चन्द्रपुराण' तथा 'गीतगोविन्द' से कितनी सहायता ली है, किन्तु इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं कि इसकी रचना के समय रवि के सम्मुख पुष्टिमार्गिया के मान्य ग्रन्थ श्रीमद्भागवत के राम कीड़ा सम्प्रधी अध्याय सदैव वर्तमान रहे। इस रचयिता के प्रमाण-स्वरूप नीचे कुछ उद्धरण दिये जाते हैं—

ताही छिन उडराज उदित रम राम सहायक ।

कुतुम मडित प्रिया-वदन जगु नागर नायक ॥

रा० प० अ० १-५१

तत्रोडुराज कतुभ करमुंरा पाच्या विलिम्पवरखेन शतमे ।

म चर्षणीनामुदगाच्छु चा मृजन्प्रिय प्रियाया इव दावदर्शन ॥

श्री० भा० दश० क० पूर्वा० अ० २६-२

कोउ तदही गुन मं शरीर तिन मग चली सुकि ।

मात पिता पति बन्धु रहे सुकि सुकि न रहा रकि ॥

रा० प० अ० १-६८

ता पार्थमाया पतिभिः पितृभिर्भ्रातृश्वशुरिः ।

गोविन्दापहृतात्मानो न न्यस्तन्त मोहिता ॥

श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० २६-८

। इति धिधि वाच्यन इति पूँधि उनमन की नाई ।

। करन तगा मन हरा-लाल-लीला मनभाई ॥

—रा० प० अ० २-२९

इत्युन्मत्तवचो गोप्य कृष्णान्पणकातरा ।

लीला भगवत्तरस्तास्ता एतुचक्रुस्तदात्मिका ॥

—श्री० भा० २२० स्क० पूजा० अ० ३०-१४

कासि कासि पिय महाबाहु, यौ उदति शक्तेतो ।

महाबिरह की धुनि सुनि रोवत लग मृग पेली ॥

—रा० प० अ० २-२६

हा ताथ रमणप्रेष्ठ कजामि कजामि महाभुज ।

गम्यास्ते कृपणाया मे नग्ये दशथ मनिधिम् ॥

—श्री० भा० २२० स्क० पूजा० अ० ३०-३६

सतत भँ न श्रभं करन, कर कमल तिहारौ ।

का घटि जहँ नाथ तनक सिर छुवत हमारौ ॥

—रा० प० अ० ३-१६

विरचिताभय वृष्णिपुयने चरणमीयुपा मसूतेनयात् ।

कम्परोन्त कान्त काम शिरभि घेटि १ श्रीकरग्रहम् ॥

—श्री० भा० २२० स्क० पूजा० अ० ३१-६

तव तिनहीं में प्रगट नण नैन्नदन पिय था ।

दृष्टि पट करि दुर्दै यहुरि प्रगटै गटर र्या ॥

पीत रसन जनमाल धरै, (लपै) मजु मुरली हथ ।

मद मद मुसिकान, निपट मनमथ के मन मथ ॥

—रा० प० अ० ४-२, ३

तायामाधिरभूद्गौरि रमयमागमुग्गाशुग ।

पीताम्बरधर मग्दी साजान्मन्मथमन्मथ ॥

—श्री० भा० २२० स्क० पूजा० अ० ३२-२

एक भजते कौ भजे, एक धिनु भजते भजहीं ।  
फहो कृष्ण वे कौन शार्हि जो दोडन तजहीं ॥

—रा० प० अ० ४-२२

भजतोऽनुभजन्येके एक एतद्विपर्ययम् ।  
नोभयाथ नजन्येक एततो ग्रूहि सातु नो ॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३२-१६

रतनायलि-मधि नील मनी अदमुत झलकै जस ।  
सकल तियन रे गग सोंपरीं पिय सोभित अम ॥

—रा० प० अ० ५-६

सत्राविशुशुमे ताभिर्भगान्देवकीसुत ।  
मध्ये मणीना हेमाना महामरक्ता यथा ॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३३-७

धार जमुनजल धँसे, लसे छुवि परदि न वरनी ।  
विहरन ज्या गजराज, सग लै तरनी करनी ॥

—रा० प० अ० ५-४६

ततश्च कृष्णोपवने जलस्त्रलप्रसूतगन्धानिलमुष्टदिवतटे ।  
चचार भृङ्ग प्रमदागणानृतो यथामच्युद्विरस्त्र करेणुभि ॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३३-२५

इन ऊपर के उद्धरणों में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पचा  
ध्यायी की रचना में अन्दरास ने श्रीमद्भागवत के राम त्रीटा सम्बन्धी  
पचाध्यायी की ग्रन्थायो में नहीं तब सत्याना ली है । रामान मकोच  
मौलिकता के कारण बहुत से उद्धरण ऊपर नहीं दिये जा सके,  
किर भी यहाँ पर इतने ही उदाहरण पर्याप्त हैं । अत्र प्रश्न यह  
उठता है कि क्या पचाध्यायी श्रीमद्भागवत का रूपान्तर मात्र है ? इतने  
उत्तर में इतना ही कहा जा सकता है कि पचाध्यायी का तृतीय अध्याय  
श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध पूर्वांश के ३१ वे अध्याय पर बहुत कुछ

अनलभित है, किन्तु जेब अयाय की पत्र रचना म भी यत्र तत्र कवि ने भाषागत का यथेच्छ अमुककरण किया है। इतना होने पर भी पञ्चाध्यायी की मौलिकता अक्षुण्ण है। प्रथम अध्याय म श्री गुरुदेव जी का नग्न शिष्य उणाद गुरुदान का दृश्य चित्रण तथा अनग्न आगमन इत्यादि प्रसंग में नन्ददास की मौलिकता और प्रतिभा का पूर्ण परिचय मिलता है।

इसी प्रकार पञ्चाध्यायी के चतुर्थ अध्याय के अन्त म गोपिया के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् अग्ने का उनका श्रुती उल्लास है, किन्तु श्रीमद्भागवत में आप केवल उनकी प्रशंसा करने ही समाप्त कर लेते हैं। पञ्चाध्यायी के पंचम अध्याय का पतन्मुनिराजन तो हमें मयथा एक स्वतंत्र ग्रन्थ सिद्ध कर देता है। श्रीमद्भागवत म वह छश नहा है। यहाँ तो गजा परीक्षित श्री गुरुदेव जी से यह प्रश्न करते हैं कि धर्म-सम्हापक साक्षात् ईश्वर के अवतार भगवान् कृष्ण चन्द्र ने परश्विरो क साथ इस प्रकार का आचरण कैसे किया —

सस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ।  
 अवतीर्णो ऽपि भगवानशेन जगदीश्वर ॥  
 स कथं धर्ममेतूना वक्ताकनाऽनिरक्षिता ।  
 प्रतीपमाचरद् भङ्गारदाराभिमशनम् ॥  
 आसक्तमो यदुपति कृतत्रात्रैशुगुम्भितम् ।  
 किमाभिप्राय एत न सशय क्षिण्वि सुमने ॥

श्री० भा० दश० स्क० पत्रा० अ० ३३-२७, २८, २९

हमने मनागत में श्री गुरुदेव जी कहते हैं कि नेत्रस्वी पुरुषा ने किसी प्रकार दोष नहीं लगता। ये तो सर्वमक्षुण्ण करी वाली शक्ति के समान मयथा स्वतंत्र हैं —

धर्मपतिक्रमो दृष्ट इश्वराणां च साहमम् ।  
 तेनीयसां न दोषाय वद्रे मर्यभुजो यथा ॥

श्री० भा० दश० स्क० पत्रा० अ० ३३-३०

राम-क्रीडा सम्बन्धी अन्तिम अध्याय को समाप्त करते हुए श्रीमद्भागवतकार कहते हैं, कि जो 'व्रज-चधुग्रो' तथा 'विष्णु' की क्रीडा-मन्थ की कथा को श्रद्धापूर्वक सुनते तथा वर्णन करते हैं वे परम भक्ति को प्राप्त करके भगवान् से मुक्त हो जाते हैं —

विनीहित व्रजवधुभिरिदं च विष्णौ,  
श्रद्धान्वितोऽनुश्रुणुयादथ वर्णयेत् ।  
भक्ति परमं भगवति प्रतिलभ्य काम,  
हृद्रोगमाप्रवपहिनोत्यचिरेण धीर- ॥

नन्ददास भी पचाव्यायी की समाप्ति इसी प्रकार करते हैं —

इहि जल-रम-माल, षोडि जतनन करि पोई ।  
साधन है पहिरौ, घर तोरौ मति पोई ॥  
खवन, कीरतन, ध्यान-सार, सुभिरन को ह पुनि ।  
ग्यान सार, हरि गान-सार, सुति-सार, गुही गुनि ॥  
अव-हरनी, मन हरनी, सुन्दर-भ्रम-वितरनी ।  
"नन्ददास" के कठ वसो, नित भगवत्-करनी ॥

भागवत का राम-क्रीडा-सम्बन्धी अंश हिन्दी के मध्यमालीन कवियों का इतना प्रिय विषय रहा है कि कई कवियों ने इसे रीसकर अपनी तोपनी को पवित्र किया है। नन्ददास ही का भाति 'सौमनाथ' कवि ने भी 'राम-पचाव्यायी' की रचना की है। श्रीमद्भागवत पर ही अवलम्बित होने के कारण दोनों कवियों के वर्णन प्रायः एक से हैं और कहाँ कहाँ यह कहना अत्यन्त कठिन हो जाता है कि किसका वर्णन उन्कृष्ट है। इतने पर भी सौमनाथ की पचाव्यायी अथ तक अप्रशंसित ही है। तुलना के लिये दोनों कवियों के रत्निय पदाओं नीचे उद्धृत किया जाता है। नन्ददास कृष्ण के रास का वर्णन करते हुए चन्द्रोदय का वर्णन प्रायः इसी भाँति किया है —

ताही दिन उड़राज उल्लित, रम राम महायक ।  
 कुकुम मगिडत प्रिया प्रदन, जनु नागर नायक ॥  
 कौमल बिरन धरन गभ यन मे व्याधि रही यौ ।  
 मासिज खेत्यौ फागु, घुमरि घुरि रख्यौ गुलाल उर्यौ ॥

( नन्ददाम )

विष्यौ मनोरय रमन कौ, निज माया थपनाथ,  
 ता छन चन्द उदै जय्यौ, पूर्य दिशा रचाय ।  
 यही घेर में तिय मिली, यात हिय हुलमाय,  
 नायक मनु मुख मडलहि, दिय कुमकुम लपटाय ।

( सोमनाथ )

गापियां के अर्धीर होने का वर्णन भी दोनों कवियों का उत्कृष्ट एवं  
 समान है हुआ है —

ते पुनि तिहिं भग चली, रँगौली तजि गृह सगम ।  
 जनु विचरन त छुटे, छुटे नव प्रम बिहगम ॥  
 फोड तग्यौ गुन भै मरीर, तिन सग चली कुकि ।  
 मान पितापति बन्दु रहे कुकि, कुनि न रहा रकि ॥  
 सावन सरिता रकै कहूँ करी फोदि-जनन अति ।  
 कृष्ण हर जिन के मन ते दया रक अगम गति ॥

( नन्ददाम )

सैंचि लिया मा कुज विहारी,  
 लोकराज प्रज तियन बिसारी ।  
 निज निच गृह तैं इहि विधि डगरा,  
 भिन्दुहि मितन सरित जया सगरी ।  
 जनु विचरन तैं छुटी चिरियाँ,  
 विधिध रग गहि धिरैं धिरियाँ ।



पति पितु मातु बन्धु की हटकी,  
रहि न सकी स्याम सा अटकी ।

( सोमनाथ )

भारतीय साहित्य में जितना कृष्ण-चरित्र जटिल एवं गम्भीर है उतना सम्भवतः दूसरा नही। यदि महाभारत में श्रीकृष्ण एक चतुर पञ्चाध्यायी में कृष्ण राजनीतिज्ञ तथा महान् दार्शनिक के रूप में वर्तमान का स्वरूप हैं तो श्रीमद्भागवत तथा हरिवंश पुराण में उनका शक्तिमय रूप हो जाता है। लोक-कल्याण के लिए वे अनेक असुरों का महार करते हैं। आगे चलकर पुराणों में ही कृष्ण के लीलामय रूप का भी दर्शन होना है और वास्तव में भाषा-साहित्य का इसी रूप में सम्बन्ध है।

भाषा साहित्य में कृष्ण का एक रूप हमें मैथिल-कोकिल विद्यापति में मिलता है। याप न मरुत में कामल-कान्त-पदावली के अधिनायक अमर कवि जयदेव के आदर्श पर ही राधा तथा कृष्ण के प्रेम की अकित किया है निमम प्रधान रूप से शृङ्गार-रस की अभिव्यचना हुई है। विद्यापति के प्रायः अधिकांश पद एक मात्र लौकिक प्रेम के ही अग प्रत्यग स्वरूप हैं, किन्तु आपने कतिपय ऐसे पदों की भी रचना की है जिसमें राधाकृष्ण के अलौकिक प्रेम का वर्णन है। मिथिला में विद्यापति चारों भले ही वैष्णव कवि के रूप में प्रख्यात न हा, किन्तु चंडीगम के पथ प्रदर्शन होने के कारण आप बंगाल में वैष्णव तथा भक्त कवि ही के नाम से विख्यात हैं।

भगवान् कृष्ण के दूसरे रूप का दर्शन हमें पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में होता है। इस काल में कृष्ण भक्ति की एक लहर समस्त भारत को आह्वानित कर देती है। श्रीमद्भागवतकार ने वासुदेव-भक्ति को यज्ञ, ज्ञान तथा तप आदि से श्रेष्ठ मतलाया है —

वासुदेव परा वेदा वासुदेव परा मत्वा ।

वासुदेव परा योगा वासुदेव परा क्रिया ॥

वासुदेव पर ज्ञान वासुदेव पर तप ।

वासुदेव परो धर्मा वासुदेव परा गति ॥

वास्तव में इस युग में भागवतकार की उपर्युक्त पुस्तक का प्रक्षरशालन हुआ । हम इसे 'भक्तियुग' कह सकते हैं । इस युग में तुन्दावन वैष्णव धर्म का केन्द्र बना जिसमें फलस्वरूप प्रजभाषा में अनेक भक्त कवि उत्पन्न हुए । मुरदास तथा नन्ददास इन कवियों में अग्रगण्य थे । आगे चलकर 'रीति-काल' में कृष्ण के इस रूप में भी परिवर्तन हुआ । इस काल में वे भक्ता के आगम्य देव न होकर नायक बन गये और राधा नायिका बन गई । रीतिकाल के ममस्त कवियों—जैसे बिहारी तथा देव आदि ने भगवान् कृष्ण को इसी रूप में प्रकृत किया और 'कन्हैया' शब्द एक प्रकार से 'नायक' का पर्यायवाची हो गया । श्रेणी विभाजन की दृष्टि से हम इसे कृष्ण का तीसरा रूप कह सकते हैं ।

कविरत्न नन्ददास ने भगवान् कृष्ण के दूसरे रूप को ही ग्रहण किया है । वे वास्तव में एक भक्त कवि हैं । शृंगार रस का प्राचुर्य ही ने कारण कतिपय आलोचक उनके काव्य में लौकिक पक्ष की प्रधानता मानते हैं, किन्तु यदि विचार करके देखा जाय तो नन्ददास एक धार्मिक कवि थे । 'पुष्टिमार्ग' से उन्हें कृष्ण-चरित्र का जो सुन्दर अर्थ प्राप्त हुआ था, उसी ने उन्हें काव्य-रचना की ओर प्रेरित किया । इसलिये पारलौकिक पक्ष का सर्वथा त्याग कर केवल लौकिक दृष्टि ने ही नन्ददास पर विचार करना उनके साथ अन्याय करना होगा । नीचे हम दोनों दृष्टियों से नन्ददास के 'रास-पञ्चाध्यायी' पर विचार किया जायगा ।

लौकिक दृष्टि से पञ्चाध्यायी मयोग शृङ्गार की एक सजीव रचना है निगम कृष्ण तथा गोपियों की रासक्रीड़ा का वर्णन है । मुझ पञ्चाध्यायी में वर्णनी मुरली धनि मुझ ज्योत्स्ना विमदित रासि लौकिक पक्ष में गोपिया उत्सुन होकर कृष्ण-दर्शन के लिए पर ने निवृत्त पडती हैं । प्रेम में तल्लीन होने के कारण उन्हें लोभ-भयान्त का

व्यान तक नहा रता । वे कृष्ण के सनिपट पहुँच कर उनके चारों ओर गूँधी हो जाती हैं । इसी समय चतुर नायक, लीला प्रिय, श्रीकृष्ण को कुछ 'मनता' सूझती है । वे गोपिया को स्त्री वम की शिक्षा देकर उन्हें घर लौट जाने के लिए कहते हैं । गोपियों को कृष्ण ने इस व्यवहार से बड़ा आघात पहुँचता है । वे स्तब्ध होकर सड़ी हो जाती हैं । उनके त्रिम्योष्ठ मुरझा जाते हैं तथा विरह के कारण वे दीर्घ निश्वास लेने लगती हैं —

जबै कल्या पिय जाउ, अधिक चित बिता बाड़ी ।  
 पुनरिा की सां पाति, रहि गइ इकटक ठाड़ी ॥  
 दूर सो दनि द्ये-सीव, प्रीत ल चलीं नाल सी ।  
 अलक-अलिा के नार नमित जनु कमल माल सी ॥  
 हिय भरि विरह-हुताम, उसासन सँग आवत भर ।  
 चले बहुक मुरझाइ, मद भरे अर-प्रिय-वर ॥

इसके पश्चात् गोपिया श्रीकृष्ण से तब पूर्ण अनुनय विनय करती हैं और अन्त में यमुना-तट पर राम क्रीडा आरम्भ होती है —

उज्जल मृदु गालुका पुलिन अति मरस सुहाई ।  
 जमुना जू िज कर-तरंग करि आपु बनाई ॥  
 पैठे तहँ सुन्दर सुजान, सब सुख-निधान हरि ।  
 यितामत त्रिविध विलास हास-रम्य हिय-हुलास भरि ॥

माधारण लोकिन दृष्टि से गोपिया का इस प्रकार का आचरण नितान्त गर्हित प्रतीत होता है । वे तुल वपुएँ हैं । अतएव रात भर कृष्ण ने साथ उनका विहार करना उन्हें अश्लीलता तथा निर्लज्जता की चरम सीमा तक पहुँचा देता है ।

परमात्म परब्रह्म, सबके अन्तरजामी ।

नारायण-भयमान धरम करि सब के स्वामी ॥

इस प्रकार कृष्ण को परमात्मा तथा गोपिया का अनेक आत्मा मान लेने से बन्ददास की इतिहास का पारलौकिक वस्तु दृष्टि के सम्मुख आ जाया है । सूक्ष्म दृष्टि से गोपियों का बिम्ब लौकिक विषय नहीं है; किन्तु यह परमात्मा से आत्मा का विभोग है और कृष्ण से उनका मिलन आत्मा परमात्मा का सम्मिलन है । जिस प्रकार गदी समुद्र से मिलकर अपना अस्तित्व गो देती है, उसी प्रकार गोपिया भी कृष्ण से मिलकर अपनी स्वतन्त्र सत्ता नष्ट रखती —

झाड़ उमँग सौं भिला रंगीली गोप-बधु यों ।

नद सुखा नागर सागर यों प्रेम नदी ज्यों ॥

आत्मा परमात्मा के चिरन्तन बिम्ब का चित्र कनकद रशी ने भी एक स्थान पर खाया है । वे कहते हैं —

“हरि अहरह तोमार विरह”

राधा के कृष्णरूप में परिणत हो जाने की चर्चा मेथिल-कोकिल विद्यापति ने भी की है—

“अनुदिन माधव माधव सुभिरत राधा भेलि मधाई” ।

ब्रह्मपुत्र में लिखा है कि सृष्टि की इच्छा से उन (परमात्मा) ने अपने को दो भागों में विभक्त किया । उसका एक भाग पुरुष और दूसरा स्त्रीरूप में आर्जित हुआ —

द्विधा कृत्वात्मनो देहमद्वेन पुरुषोऽभवत् ।

अद्वेन सारी तस्यान्तु सोऽभूजत् विविधा प्रजा ॥

—ब्रह्म० १-२०

इस प्रकार पुरुषरूप में परमात्मा तथा स्त्रीरूप में आत्मा की कल्पना भारतीय दार्शनियों ने दीर्घकाल के चिन्तन का फल है, किन्तु

एक सौन्दर्यमय गालरूप में परमात्मा की प्रतिष्ठा आचार्य उल्लभ ने ही की। कृष्ण के इसी रूप को लेकर सुरदास, नन्ददास तथा अष्टछाप के अन्य कवियों ने अपने-अपने काव्य की रचना की। यद्यपि कृष्ण की गाल, यौवन तथा प्रिय-लीला के वर्णन में इन कवियों ने शृंगार रस की ही प्रधानता रखी, किन्तु भक्ति से ओतप्रोत होने के कारण सर्वत्र इनकी कविता में दिव्य शृंगार की झलक है। आगे के कवियों का कविता में दिव्य शृंगार का यह स्तोत्र प्रायः सत्र सा गया। इसका एक मुख्य कारण था भक्ति का प्रभाव। कृष्ण के रस विलास को साधारण शृंगारिकता की नोटि में रखकर लोग उसके आध्यात्मिक रहस्य को भूल न जायँ, इसके लिए ये कविगण बीच-बीच में उनके अलौकिक 'व्रतारूप' की ओर भी इङ्कित करते रहते हैं। कवियर नन्ददास जी तो इस पर विशेष ध्यान रखते हैं। 'निशोर कृष्ण' को गोपिया के साथ राम में मग्न देखकर ब्रह्मा आदि देवताओं को पराजित करनेवाला कामदेव आता है, किन्तु कृष्ण उलटते उसी के मन का मथन करके उसका पराभव करते हैं —

तव आर्यो वह "काम" पचसर कर हैं जाकैं ।  
 ब्रह्मादिक का जीति, बढि रखौ अति मूढ ताकैं ॥  
 निरखि मज-बधू सग, रग भाने किसोर तन ।  
 हरि मनमथ बर मथ्यौ, उलटि वा मनमथ कौ मन ॥  
 मुरझि परया तहँ मेन, कहँ धनु, कहँ निमित्त बर ।  
 रति देखति पति-दसा भीति हैं मारति उर-कर ॥  
 पुनि-पुनि पिय अपलोकीति, रोयति, अति अनुरागी ।  
 मदन-यदन अमृत चुनाइ, भुज भरि लै भागी ॥

( रास-पचाध्याया )

यहाँ तब नन्ददास जी की रास-पचाध्यायी पर कुछ विचार प्रकट किये गये, अब उनके "भँवरगीत" के विषय में कुछ विवेचन किया

जायगा। गाल्प में भ्रमरगीत में रवि ने गोपिया के विरह का बहुत ही रक्तगात्रण वर्णन किया है। तथा इस प्रकार है —

कृष्ण गोपिया को छोड़कर मथुरा चले जाते हैं। इधर उनके विरोग में गोपिया की गटी दयनीय दशा हो जाती है। उह सान्त्वना भ्रमर-गीत की देने के लिए कृष्ण अपने अनन्य मित्र उद्धव को कथा भजत हैं। उद्धव उद्धवगदा है। अतएव वे तरुं द्वारा गोपिया के मन्मथ निर्गुण ब्रह्म की स्थापना करते हैं। परन्तु कृष्ण ने वियोगानल से मतलब गोपिया को उद्धव के उम शुभ ब्रह्मवाद में शान्ति कैसे हो? उस, निर्गुणवाद और सगुणवाद में 'शाब्दाय' प्रारम्भ हो जाता है। इस नोक भाग के समय कदा से एक भ्रमर उड़ता हुआ आ पहुँचता है। गोपिया के लिये यह एक अच्युता भ्रमर मिल जाता है। व निर्गुणवाद के सम्बन्ध में तितनी जली गयी बातें कह सकती हैं, उस भ्रमर को लक्ष्य करन कहती हैं। सक्षेप में भ्रमरगीत की यही कथा है। इसका मुख्य उद्देश्य निर्गुणवाद का खण्डन और सगुणवाद का प्रतिपादन है।

भ्रमरगीत की चर्चा सत्रप्रथम श्रीमद्भागवत के दशम-स्कन्ध (पुनार्द्ध अध्याय ४६ ४७) में आती है। इसी कथा के आधार पर भक्त प्रसन्न भ्रमर गीत की सुरदास जी ने हिन्दी में सत्र में पहले भ्रमरगीत परम्परा की रचना की थी। सुरदास के पश्चात् तो हिन्दी में भ्रमरगीत लिखने की परिधाटी भी चल पड़ी और मन्ददास, हितचन्द्रासन दास, प्रागन रवि, रीमान शंखपुराजभिह, कविरत्न सत्यनारायण आदि अनेक कविया ने भ्रमरगीतों की रचना की। इस विषय की सत्र से अंतिम रचना स्वर्गीय जगन्नाथदास 'खान्जर' लिखित 'उद्धवशतक' है। यद्यपि खान्जर जी ने अपने इस काव्यग्रन्थ का नाम भ्रमरगीत नहीं रखा, तथापि इस काव्य का विषय वही है। अतएव इसकी गणना भी भ्रमरगीत के अन्तर्गत की जा सकती है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि 'भ्रमरगीत' का उद्गम स्थल श्रीमद्भागवत है। अत्र सन्क्षेप में इस बात पर विचार किया जाता है कि श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत और नन्ददास जी के भ्रमरगीत में क्या अन्तर है। श्रीमद्भागवत में यह कथा इस प्रकार है—कृष्ण जी के पिता उद्धव एक दिन उनसे मिलते हैं। उधर-उधर की बातचीत होने के बाद भगवान् कृष्ण उद्धव के द्वारा नन्द-यशोदा तथा गोविन्दा के लिए सन्देश भेजते हैं। सुन्दर रथ पर आरूढ़ होकर उद्धव ब्रज में जाते हैं और वहाँ सर्वप्रथम नन्द से मिलते हैं। नन्द जी न्वागत के पश्चात् उनसे कृष्ण का कुशल-क्षेम पूछते हैं। कृष्ण के गुणा का स्मरण करके यशोदा एवं नन्द प्रेम विह्वल हो उठते हैं। फिर उद्धव का उपदेश प्रारम्भ होता है। वे नन्द यशोदा से कहते हैं कि कृष्ण के लिए कोई उत्तम, अधम अथवा सम विषम नहीं है। उनके न तो माता पिता हैं और न पुत्रादि। सत, रज और तम गुणों में भी उनका कोई समथ नहीं है। वे सम्पूर्ण भूता में वर्तमान हैं। अतएव उनके लिए दुःख प्रकट करना ठीक नहीं —

मा खिद्यन् महाभाग द्रुपदथ कृष्णमन्तिके ।  
 अन्तर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥ ३६ ॥  
 न ह्यस्यास्ति प्रिय कश्चिन्नाप्रियोऽस्यमानिना ।  
 नोत्तमो नाधमो नापि समानस्यासमोऽपि वा ॥ ३७ ॥  
 न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः ।  
 नारमीयो न पररचापि न देहो जन्म एव च ॥ ३८ ॥  
 न चाम्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु ।  
 क्रीडार्यं सोऽपि साधूना परित्राणाय कल्पते ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीमन्भागवत् के द्वियालीसवें अध्याय में केवल तन्द तथा उद्धव में ही बातचीत होनी है । इसके पश्चात् महालीसवें अध्याय में गोपिया तथा उद्धव का संवाद प्रारम्भ होना है । कमल-नयन, प्रलम्बबाहु कृष्ण भगवा उद्धव के पीताम्बर तथा कुण्डलादि से देखकर गोपियाँ उत्सुकता-पूर्वक उनके निम्न आती हैं तथा कृष्ण के समाचार जानने का आह्वान प्रकट करती हैं —

त वीक्ष्य कृष्णानुचरं ब्रजस्थितं प्रलम्बबाहुं नवकवतोचनम् ।

पीताम्बरं पुष्करमालिं लसन्मुखारविन्दं मणिमृष्टकुण्डलम् ॥ १ ॥

शुचिस्मिता बोधप्रमपीच्यदशनं कुतश्च कस्यान्युनयेरभूषणं ।

इति स्म भगवा परिवर्तुरुसुभास्तमुत्तमलोकपताञ्जुताश्रयम् ॥ २ ॥

त प्रश्रयेणावकता सुमङ्गलं सत्रीदहासेक्षणं सूतानिभिः ।

रहस्यं पृच्छन्तुपविष्टमामने विज्ञाय मन्देशहरं समापने ॥ ३ ॥

—श्री० भा० अ० स्क० पू० अ० ४७

फिर गोपिया कृष्ण के गुणा का स्मरण कर के बिलाप करती हैं । इसी क्षण एक भ्रमर वहाँ से उड़ता हुआ आ पहुँचता है । उस भ्रमर में ही कृष्ण और सन्देशवाहक उद्धव के अभिन्न स्वरूप की कल्पना करने गोपियाँ प्रमदिल हो उपरोक्त भाषण करने लगती हैं —

गायन्त्यं प्रियकमाक्षि रङ्गद्वयं गनद्वयं ।

तस्य सस्मृत्यं सस्मृत्यं यानि कैशोरं वात्पयो ॥ १० ॥

काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायती कृष्णमगमम् ।

प्रियप्ररथापितं दूतं कल्पयित्प्रेममन्त्रिणी ॥ ११ ॥

—श्री० भा० अ० स्क० पू० अ० ४७

इसके पश्चात् उद्धव गोपिया से कृष्ण का सन्देश कह कर उड़ शान्त करते हैं और अन्त में मत्तभूमि, तद तथा मत्तधुआ की उदना करते हुए लौट जाते हैं —



चन्दे नन्दवज्रघ्नीणा पादरेणुमभीक्ष्णश ।

या सा हरिकथोद्गीत पुनाति चन्द्रत्रयम् ॥ ६३ ॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ४७

उपयुक्त निवेदन से यह बात स्पष्ट रूप से पाठकों के ध्यान में आ जायगी कि भागवतकार ने गोपिया के साथ साथ नन्द-यशोदा के कृष्णविरह को भी काफी महत्व दिया है। यही कारण है कि भागवत के एक सम्पूर्ण अध्याय में केवल नन्द-यशोदा के विरह का ही चित्रण हुआ है। किन्तु नन्ददास के लिए नन्द-यशोदा का विरह-वर्णन मानी अनावश्यक था, और इसी लिए उन्होंने केवल गोपिया के विरह चित्रण तक ही अपने को सीमित रखा है।

एक बात और है। श्रीमद्भागवत में भ्रमर का प्रवेश सतालिसवें अध्याय में उस समय होता है जब गोपी उद्वेग-सवाद प्रारम्भ होता है। इसी प्रकार नन्ददास ने भी भ्रमर को ही आधार मानकर गोपी उद्वेग-सवाद प्रारम्भ कराया है। इसमें बात होता है कि नन्ददास का भ्रमरगीत श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध (पूर्वा) के केवल सतालिसवें अध्याय पर ही अत्राभ्यन्त है।

श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत तथा नन्ददास के भ्रमरगीत की तुलना करते हुए एक बात और भी मालूम होती है। यह यह कि भागवत में उद्वेग के उपदेश से गोपियाँ एक प्रकार से सन्तुष्ट हो जाती हैं, किन्तु नन्ददास की गोपियाँ सन्तुष्ट नही होती हैं। वे तर्क करती हैं और अन्त में उद्वेग को निरुत्तर करके यह पूर्णतया सिद्ध कर देती हैं कि ज्ञान-मार्ग से भक्ति-मार्ग ही श्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त भागवत में यह गीत उतने विस्तार में भी नहीं मिलता जितना नन्ददास की रचना में। उद्वेग के मथुरा जाने का प्रसंग श्रीमद्भागवत में उहुत ही सक्षिप्त रूप में, केवल एक ही छंद में, वर्णित है। परन्तु नन्ददास जी ने इसका बहुत ही विस्तृत वर्णन अत्यन्त सुन्दर रूप में किया है।

पहिला बान "गि इत उमर म ध्यान देने योग्य है यह वह है कि सुरदाम ने श्रीमद्भागवत की कथा को अत्यन्त विस्तृत कर दिया है। नन्ददास तथा सूर उन्दाही तीन भ्रमरगीत लिखे हैं जिनमें से पहिले रामके भ्रमरगीता में कृष्ण के गोमुल में भजे हुए सन्देश का, दूसरे की तुलना में कृष्ण के सदेश का तथा तीसरे में गोमुल पहुँचने पर उद्भव और गापिया के सवाद का वर्णन है। किन्तु नन्ददास के भ्रमरगीत में केवल गोपी उद्भव के सवाद का वर्णन है। सुरदाम ने गापिया के मत की अवस्थाओं का बहुत ही सूक्ष्म विश्लेषण किया है। इसके विपरीत नन्ददास की रचना में ज्ञान तथा भक्ति का विवेचन मुख्य हो जाता है और मनासगा का गोण्य।

नन्ददास के भ्रमरगीत में उद्भव स्वयं दार्शनिक सिद्धान्तों का उपदेश देते हैं, लेकिन गूढागार के भ्रमरगीत में आप कृष्ण के सदेशरूप में ही उद्भव प्रकट करते हैं। इसका प्रतिरिक्त सूरसागर में भ्रमर उद्भव के राम मन के पूर्व ही आ जाता है, किन्तु नन्ददास का भ्रमर श्रीमद्भागवत की भाँति रास में आता है। इसका प्रतिरिक्त सुरदाम की गोपना केवल हृदय के कोमल भाग का मधुर स्पर्श करके ही ज्ञान पर भक्ति की श्रेष्ठता प्रस्थापित करती है, किन्तु नन्ददास के भ्रमरगीत की गापियाँ बोधवृत्ति को जागृत करने तर्क प्रितक भी करती हैं। उदाहरणार्थ, उद्भव जब यह कहते हैं कि कृष्ण निर्गुण तथा निर्विकार हैं, वे हाथ, पैर, मुख, चक्षु, नासिका, ग्राही इत्यादि इन्द्रिया से रहित हैं, इस स्थूल जगत् तथा माया से अलग होकर केवल ज्ञान की सहायता से ही उनकी उपलब्धि हो सकती है तब नन्ददास की गोपियाँ अत्यन्त तर्क के साथ, असाध्य युक्तियाँ द्वारा, उनका खण्डन करती हैं। वे कहती हैं —

जो मुख नाहिन हतो कछो बिन माखन खायो ?  
पायन बिन गोसद्व पहौ बन धन को धायो ?

श्रांतिन में अजन दयो गोवर्धन लयो हाथ ।

नन्द जसोदा पूत है कुँवर कान्ह ब्रजनाथ ॥

सत्ता सुनु स्वाम के ।

भला इतने प्रत्यक्ष प्रमाणों के रहते हुए प्रबन्ध के निर्गुण रूप को कैसे स्वीकार किया जाय !

नन्ददास जी का भ्रमरगीत भागवत के आधार पर रचा गया है सही, परन्तु इसके तथा प्रमग और क्रम में एक खास मौलिकता नन्ददास कृत भ्रमरगीत का क्रम जिनसे नन्ददास जी के भ्रमरगीत का तथा-क्रम स्पष्ट रूप से पाठकों के ध्यान में आ जायगा । आरम्भ में उद्धव गोपिया के शील तथा प्रेम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं —

कहन स्वाम सँदेश एक मैं तुम पे आयो ।  
कहन-समय सकेत कहूँ अक्सर नहिँ पायौ ॥  
सोचत ही मत मैं रगो कय पाऊँ इक ठाउँ ।  
कहि सँदेश नँदलाल को बहुरि मधुपुरी जाउँ ॥

सुनौ ब्रज नागरी ।

कृष्ण का नाम सुनते ही गोपिया प्रेम विह्वल हो उठती है । उन्हा रोम राम पुलनायमान हो जाता है तथा उनके नेत्र अश्रुपूर्ण हो उठते हैं । व उद्धव का कृष्ण-भाषण तथा मुहूर्त जानकर पात्राय देती है और उनसे कृष्ण का सुगता-सौम पूछती है । उद्धव कृष्ण तथा अन्य यदु-पगिया व कुशलादि की चर्चा करते हुए इन बातों को भी प्रकट करते हैं कि कृष्ण थोड़े ही दिना में यहाँ आयेगे, अतएव अधीर होने का आग्रहमत्ता नहीं । इस सन्देश को सुनते ही गोपियाँ मूर्च्छित हो जाती हैं —

सुनि मोहन सदेम रूप सुमिरन है आयो,  
पुलकित आनन-कमल भग आवेय जनायो ।

विह्वल हूँ धरनी परी अचरुनिता मुरभाय,  
 दै जल छोट प्रबोधही ऊधो धैन सुनाय ।

सुनो बजनागरी ।

इसके पश्चात् उद्वेग की जान गाथा प्रारम्भ होती है । आप गोपियाँ से कहते हैं — ब्रह्म की सत्ता तो जल, रज्जु, आकाश आदि में सर्वत्र समान रूप में व्याप्त है । जिन्हें तुम 'कान्त' ( कृष्ण ) कहती हो वह तो निष्कार तथा निर्लसत है । उनके माता पिता भी नहीं हैं । यह समस्त प्रह्लाद एक दिन उन्हें त्रिलीन हो जायगा । वे तो केवल लीला रूप में ही प्रबोधी हुए हैं और केवल योग में ही प्राप्त किये जा सकते हैं । गोपियाँ इसका उत्तर कितना स्वाभाविक ढंग से देती हैं ।

ताहि बतावहु जोग जोग ऊधो जेहि भावै,  
 प्रेम सहित हम पास नन्द उदन गुन गाव ।  
 नैव धैन मन प्रान में मोहन गुन भरपूरि,  
 प्रम पियूपै छडि कै कान समेटै बूरि ।

सत्वा सुन स्वाम के ।

अकाश शुक्तियाँ तथा प्रत्यक्त परमाणु न रहते हुए भी जब प्रति पत्नी कितनावाद करता ही जाता है तो उस पर क्रोध आ जाता है । इसका प्रत्यक्त परिणाम यह होता है कि विनाश करने बात की आर में स्वाभाविक उपेक्षा हो जाती है और चित्त-वृत्ति दूसरी ओर संचरण करने लगती है । गोपियाँ की भाँठीय यही तथा होती है । जब अनेक प्रमाणा में रहते हुए भी उद्वेग अपने अर्द्धत ज्ञान-अधन से तनिक भी विचलित नहीं होते तब अन्त में गोपियों क्रोधवश उन्हें नाम्निह कन्दर उपाधित करती हैं । इस प्रकार उद्वेग की ओर उपेक्षावृत्ति वाग्य करते हैं । गोपियों का ध्यान स्वाभाविक रति से कृष्ण की ओर आकर्षित हो जाता है । उपाधित के तमो कृष्ण का मनमोहन

रूप उपस्थित हो जाता है और व उसके दशा में तन्मय हो जाती है ।  
नन्ददास ने इस मनोप्रेरणाविश्वल को दृढ़ निभालने में एक  
तन्म-ज्ञान रूपा एव कुशल कलाकार का परिचय दिया है । अन्य  
भ्रमर-गीतकार इस मार्भिक विश्वल तक न पहुँच सके । देखिए किस  
प्रकार गोपियाँ कृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन कर रही हैं —

जैसे मैं नन्दलाल रूप नैनन के आगे,  
आय गये छत्रि छाया बने पियरे उर बागे ।

कृष्ण के समुत्पन्न आते ही अत्यन्त आत्त भाव से गोपियाँ उनसे  
प्राथना प्रारम्भ कर देती हैं —

अहो नाथ रमानाथ और जदुनाथ गोसाईं,  
नन्द-नन्दन विडरार्ति फिरति तुम बिन सब गाईं ।  
काहे न फेरि कृपाल ह्ये गो-भवालन सुख देहु,  
हुस निधि-जल हम घूडहीं कर अत्रलवन देहु ।

निठुर ह्ये कहँ रहे ।

इस प्रार्थना के पश्चात् गोपियों का उपासक आरम्भ होता है ।  
वे आपस में कहती हैं कि दूसरों को काट देना कृष्ण के लिये कोई  
नई बात नहीं है । ये तो वह जन्म के निर्दयी हैं —

इनके निर्दय रूप में नाहिन कठु बिधिप्र,  
पय पीवत ही पतना मारी बाल चरित्र ।

भित्र ये कौन के ।

जन्म करावन जात हे त्रिस्तामित्र समीप,  
मग में मारी ताडका रघुपथी कुजर्दप ।

बाल ही रीति यह ।

मीता जू के कहे त सूयनवा प कोपि ।

छेदि थग त्रिरूप के लोगन लग्ना लोपि ।

कहा ताकी कथा ।

इस प्रकार वृष्ण को निन्दुरता का वर्णन करती हुई गोपियाँ उनके प्रेम में मग्न हो जाती हैं —

यहि विधि होइ आवेस परम प्रेमहिं धनुरागी ।

और रूप पिय चारत तहाँ से देवन लागी ।

रङ्गीली प्रेम की ।

गोपिया के इस त्रिगुण प्रेम का प्रभाव उड़ते पर भी पड़ता है —

देवन इनको प्रम नेम ऊग्र को भाष्य,

तिमिर भाव आवेस बहुत अपने मन लाग्यौ ।

मन में कह रज पाव के लै माधे निज धारि,

हौं तो वृत्कृत है रह्यौ त्रिभुवन चानै धारि ।

बन्ना जोग ये ।

जिस समय वे जात हो रहा था, उन्ही समय कदा से उड़ता हुआ एक भ्रमर आ पहुँचा । उस, गोपिया को उड़ते को पकड़ने के लिए एक अन्धका मौना मिल गया । वह भ्रमर को ही सम्बोधित करके उद्धव को जली-शरी मुनाने लगा —

निनि परसो मम पाँवरे, तुम मानत हम चोर,

मुमहीं साँ कपटी हुते मोहन रदकिमोर ।

आपन सम हमको कियो चाहत है मतिमद,

कपट के हृद सो ।

कोउ कहे अहो मनुष द्याम जाको मुम चेला,

कुषजा तीरथ जाय कियो इद्रिा को मेला ।

मनुषन सुधि त्रिसराय कं आवे गोकुल मोहि,

इहाँ सबै प्रेमी दस पुमरो गाएव गहि ।

पधारो राखे ।

इस प्रकार वृष्ण के गुणों का स्मरण करती हुई गोपियाँ एक चर चरुशास्त्र हो उठीं —

ता पाछे इकठार ही रोई सकल प्रजानारि,  
हा करनामय नाथ हो केसव कृष्ण मुरारि ।

फाटि हियगे चलयो ।

गोपिया के प्रेम प्रवाह म उडव श्री जान गरिमा रह चली । उन्हे  
अपना अज्ञान सभने लगा तथा हृदय मे भक्ति का स्रोत उमड़ पड़ा —

धन्य धन्य ये लोग भजत हरि को जो ऐसे,  
शौर जु पारस प्रेम बिना पारत कोड कैसे ।  
मेरे या लघु ज्ञान कौं उर मद रहयो उपाधि,  
अप जाना प्रज प्रेम कौं लहत न आये आधि ।

बुधा सम करि वके ।

\*

\*

\*

अप रहि हौं प्रजभूमि की है पग मारग धरि,  
बिचरत पद मो पै परे सत्र सुख जीवन-मूरि ।

मुनि हूँ दुर्लभै ।

गोपियों के प्रेम का उडव पर इतना प्रभाव पड़ा कि मथुरा पहुँचते  
ही उन्हाने भावावेश म कृष्ण से कहा —

करनामयी रसिकता ह तुन्दरी सत्र भूँगी,  
जबही लौं नहिं लखो तबहिं जा वधी मूँठी ।  
मै जान्या प्रज जाय के तु हरो निदर रूप,  
जो तुमरे अबलव ही बाकी मेकी रूप ।

कीन यह धर्म है ।

पुनि पुनि कह अहो चली जाय मृन्दावन रहिये,  
प्रेम पुन को प्रेम जाय गोपिन सँग लहिये ।  
शौर काम सत्र छौंदि क डन लोगा सुख देहु,  
नानर दृश्यो जात है अबही तेइ मनेटु ।

करोगे मी वहा ।

उद्धव की बातें सुनकर ऋषण ने उनका मगध निवारण किया तथा अन्त में उद्धव प्रपना वास्तविक रूप दिखाया —

मो मैं उनमें अन्तरो ण्कौ छिन भरि नाहि,  
 क्यों देख्यो मो माहिँ वैं क्यों मैं उनहीं माहिँ ।

तरङ्गनि यारि ज्यौ ।

गोपी रूप दिखाय तथै मोहन यनवारी,  
 उद्धव भ्रमहिँ निवारि डारि मुख मोह की जारो ।  
 घपनी रूप दिखाय कै लीन्हों बहुरि दुराय ।

•

•

•

यम इन्हीं पतिया ऋण साय नन्ददास अपना गीत भी समाप्त कर गये हैं। उन्होंने अरुण भ्रमरगति में व्यथ विस्तार करके प्रपथ को बदलने की कोशिश नही की है। जितना कुछ लिखा है, बहुत ही सरल, सरल और साभिप्राय है। भागवत के आधार पर लिखा हुआ उनका यह गण्डकाव्य वास्तव में बहुत ही मधुर है।

नन्ददास आचार्य बल्लभ के पुत्र गोपासी विद्वानाथ जी के शिष्य थे, अतएव उनके दार्शनिक विचारों को समझने के लिए बल्लभानन्ददास के दार्शनिक विचारों को जान लेना परमावश्यक है।

निक विचार श्रुतियाँ की प्रामाणिकता पर आचार्य शंकर ने निम्न अद्वैतवाद को प्रस्थापित किया उसकी सत्यता की अनुभूति—वैयक्तिक साधना पर ही अन्तर्निहित होने के कारण—बहु केवल शान्तियों की चम्पु रह गई। इसके पञ्चरूप शंकर का ब्रह्म आत्मनिष्ठ शान्तियों के ही चिन्तन तथा मनन का विषय रहा। जनसाधारण को तो ऐसे लोकोत्तर तथा लोकपालक मगुण इश्वर की आवश्यकता थी जो उनके दुःखों को निवारण करता। इस अभाव की पूर्ति के लिए निशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत तथा शुद्धाद्वैत जैसे वाद प्रचलित हुए। सिद्धान्त पक्ष में श्रीवल्लभाचार्य शुद्धाद्वैतवादी थे। आप ने विष्णुस्वामी के सिद्धान्त



को ही विवर्णित रूप में जनता के सम्मुख उपस्थित किया। आचार्य शम्भु के अनुसार ब्रह्म ने विभिन्न कोई मत्ता नहीं है, जीव भी ब्रह्म ही है और जगत् भी ब्रह्म ही है। श्रीरत्नभाचार्य जी का सिद्धान्त इसमें तनिक भिन्न है। आप के अनुसार सत्-चित्-आनन्द स्वरूप ब्रह्म स्वेच्छानुसार अपने इन तीनों रूपों को कभी तो प्रकट करता है और कभी इनका तिरोभाव कर लेता है। चेतन्य जगत् इन्हीं तीनों के अशक्त आविर्भाव से सत्तात्मक होता है। ब्रह्म से आत्मा की उत्पत्ति उसी प्रकार हुई है जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि से चिनगारी की। माया भी ब्रह्म की इच्छानुगामिनी शक्ति है। जीव में जब उपर्युक्त तीनों रूपों का आविर्भाव रहता है और मायाकृत तिरोभाव दूर हो जाता है तब वह अपने शुद्ध ब्रह्म रूप में आ जाता है। यह ईश्वर के अनुग्रह से ही हो सकता है जिसको आचार्य ने 'पुष्टि' कहा है। इसी कारण श्रीरत्नभाचार्य का मार्ग 'पुष्टि-मार्ग' के नाम से प्रख्यात है।

आचार्य बल्लभ के अनुसार ब्रह्म तथा जीव के निम्नलिखित प्रधान गुण हैं —

ब्रह्म	जीव
( १ ) ऐश्वर्य्य	दीनत्व
( २ ) गौर्य	सर्वदुःख-सहन
( ३ ) यशस्	सर्पहीनत्व
( ४ ) श्री	जन्मादिसर्वापद्विषयत्व ( जन्मादि समस्त आपत्तियों के विषय )
( ५ ) ज्ञान	देहादित्वहबुद्धि ( देहादि को ही अहम् अर्थात् मैं ही मानना )
( ६ ) वैराग्य	विषयासक्ति

1 (उपासना के क्षेत्र में श्रीगुरुभाचार्य ने श्रीकृष्ण को ही सर्वोच्च माना। मोक्ष के दो उपाय—ज्ञान तथा भक्ति में आपने भक्ति को ही श्रेष्ठ बताया। ज्ञान द्वारा मोक्ष में आत्मा उत्तर (उपर) में लीन हो जाती है, किन्तु भक्ति द्वारा मोक्ष में वह कृष्ण में लीन रहती है।

शरर तथा बल्लभ, ठाना के दाशनिऱ तत्वा पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शररुऱाऱय 'एकत्वऱादी' तथा बल्लभाऱार्य 'श्रनेऱत्वऱादी' हैं। आऱाय शरर के अनुसार केवल ब्रह्म ही सत्य है और मर मिथ्या है, किन्तु बल्लभाऱाय के अनुसार व्यक्तिगत आत्माऱा की भी सत्ता है। आप के ब्रह्म तथा जीव में इतना ही अन्तर है कि ब्रह्म का अश होते हुए भी जीव में 'आनन्द' गुण यत्न नहा है।

बल्लभाऱाय्य ससार को मिथ्या कहा मानते। आप के अनुसार इश्वर तथा जगत् दोनों मत्य हैं। निऱ प्रकार कुम्भकार मिट्टी से घट की सृष्टि करता है, उस प्रकार से इश्वर जगत् की सृष्टि नहीं करता। कुम्भकार के उदाहरण में कुम्भकार तथा मिट्टी दो पृथक् वस्तुएँ हैं, किन्तु जगत् की सृष्टि के समय में इश्वर शरर तथा वस्तु दोनों हैं। वह आपो ही को जगत् रूप में परिवर्तित कर देता है। निऱ प्रकार स्वर्ण तथा स्वर्ण के आभूषण में केवल रूप का भेद है, वस्तु का नहीं, उसी प्रकार इश्वर तथा जगत् में भी केवल रूप का ही अन्तर है। सत्त्व में बल्लभाऱाय्य के दाशनिऱ विचारों के समय में इतना जान लेना पर्याप्त होगा। शरर नन्ददास बल्लभ मप्रदायी तथा 'अष्टछाप' के ऋषियों में प्रमुख थे। ततएव आप के भी दाशनिऱ विचार यही थे जो आऱाय बल्लभ के। इस समय में एक बात और भी जान लेना परमावश्यक है। वाऱा में काव्यरचना के समय दाशनिऱ तत्वा की विवेचना करना शरर का उद्देश्य नहीं रहता। वह तो अत्यन्त रमणीय शब्दों में अपने हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति करता हुआ अमसर होता जाता है। किन्तु उसकी रचना में प्रसङ्गऱ कतिपय ऐसे शब्द तथा विचार आ जाते हैं निऱमें उसके दाशनिऱ विचारों की भी अगिन

जना हो जाती है। 'रास-यन्त्राध्यायी' तथा 'भँवरगीत' में भी ऐसा ही हुआ है।

नन्ददाम जी ने भी अपने सम्प्रदायानुसार श्रीकृष्ण को प्रकृत के ही रूप में प्रकृत किया है। रास-यन्त्राध्यायी में श्रीकृष्ण-स्वरूप का वर्णन करते हुए आप लिखते हैं —

मोहन अद्भुत-रूप कहि न आवै छयि ताकी ।

। अखिल अड-ध्यापी जु ब्रह्म, आभा कछु ताकी ॥

परमात्म परब्रह्म, सबन के अन्तरजामी ।

नाराइन-भगवान, धरम करि सन के स्वामी ॥

—रा० पं० अ० १-४१, ४२

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि आचार्य बल्लभ के अनुसार 'माया भी ब्रह्म की इच्छानुगामिनी शक्ति है'। 'रास-यन्त्राध्यायी' में नन्ददाम ने इसे अत्यन्त स्पष्ट रूप में प्रकृत किया है। गोपियों के उत्तर में भगवान् स्वयं कहते हैं—मेरी वशवर्तिनी माया समस्त सत्कार को अपने बश में किए हुए है, किन्तु तुम लोगों की माया मेरे मन को भी मोहित कर लेती है —

सकल-विस्व अप-यस करि, मो माया सोहति है ।

। प्रेम-मई तुम्हरी माया, मो मन मोहति है ॥

—रा० पं० अ० ४-०६ ।

'अद्वैतवाद' के अनुसार केवल ब्रह्म ही सत्य है, और सब माया है। ब्रह्म और माया के गुण में भी अन्तर है। इसी बात को अद्वैतवादी उद्धव गोपियों से कहते हैं —

माया के गुण और, और हरि के गुण जानौ ।

। उन गुण को इन माँहि आनि काहे कौ मानो ?

जाके गुन शो रूप को जाति न पायो भेद ।  
सात निर्गुन रूप को बदल उपनिषद् वेद ॥  
सुनौ ब्रजनागरी ।

—भै० गी० २१

किन्तु बल्लभ सम्प्रदायानुयायी नन्ददास को 'अद्वैतवाद' का माया सम्बन्धी यह सिद्धान्त माय नहा । अतएव उनकी गोपिया भी अत्यन्त स्वतन्त्र भाव में इनका सङ्ग करता है —

हाँ उनके गुन गार्हि और गुन भये कहीं तें ?  
वीच बिना तरु जम मोहिं सुम बड़ा फहाँ तें ?  
वा गुन की परछाँह री माया दपन-बीच ।  
गुन तैं गुन ग्यारे भये अमल बारि जब कीच ।  
सखा सुनु स्याम के ।

—भै० गी० २०

श्रीमद्भागवतकार ने गोपिया के नेमगिन प्रेम, कृष्ण की 'लीला', 'राम' तथा 'मुरली' का वर्णन किया है । सूरदास, नन्ददास तथा अष्ट छाप के अन्य वैष्णव कवियों ने भागवत में भी बदर इनका वर्णन किया है । जिस प्रकार गोपी तथा कृष्ण साधारण सांसारिक पुरुष नहीं, किन्तु आत्मा तथा ब्रह्म त्वरूप हैं उसी प्रकार से कृष्ण की 'लीला' 'राम' तथा 'मुरली' भी साधारण वस्तुएँ नहा, किन्तु इनमें भी विशेषता है । अतः आगे इसी विषय पर कुछ विचार प्रकट किये जायेंगे ।

लीला शब्द का साधारण अर्थ ब्रीडा, निगम अथवा रीतुन है, किन्तु पद्मभाचार्य ने एक विशिष्ट अर्थ में इसका प्रयोग किया है । आप 'अरु माप्य' में लिखते हैं — न हि लीलायां किञ्चित्प्रयोजन मस्ति । लीलाया एव प्रयोजनत्वात् । इश्वरत्वादेन न लीला पश्यनुषु शक्या । सा लीला नरत्न्य मोन । नन्य लीलात्वेप्यन्यस्य तत्कीर्तने मोन इत्यर्थ । लीलेन केनलेति वा ।

अर्थात् लीला का उद्देश्य लीला ही है, जो भगवान् अपने भक्ता के अथ अवतार लेकर स्वाभाविक ही करते हैं। कोई और प्रयोजन नही। सबशक्तिमान होने के कारण ईश्वर को लीला रंघन में नही डाल सकती। यह लीला कैवल्य है। यद्यपि ईश्वर लीला में व्यस्त है, तथापि उसके मस्तीर्तन में अन्य प्राणियों को मोक्ष मिल सकती है। यह लीला स्वयं पूर्ण है।

नन्ददास ने 'रास-पञ्चाध्यायी' तथा 'भँवरगीत' में 'लीला' का प्रयोग इसी भाव में किया है—देखिये, शुकमुनि और गोपिया—यही नही, चल्कि सम्पूर्ण जटचेतन पर भगवान् की इस लीला का क्या प्रभाव है—

हरि-लीला-रम-मत्त मुदित नित विचरति जग मै ।

अदभुत गति षतहूँ न अटक है निसरति मग मैं ॥

—रा० प० अ० १२

श्री घृन्नायन चिदघन, कछु छवि धरनि न जाइ ।

कृष्ण ललित लीला के काज धरि रह्यौ जइताई ॥

—रा० प० अ० १-२२

सफल जन्तु अचिरदि जहँ हरि मृग सँग चरही ।

काम क्रोध मद लोभ-रहित लीला अनुसरही ॥

—रा० प० अ० १-२४

मौहन लाल रसालाटि, लीला इनहीं सोहै ।

केवल तनमें भई, न जानै कछु हम कोहै ॥

—रा० प० अ० २२२

लीला गुन अवतार है धरि आये तन स्याम ॥

जोग जुगुति सो णइये परब्रह्म पुर धाम ॥

—भँ० गी० ११

ऊपर के पदों का मनन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भगवान् कृष्ण की 'लीला' की साधारण मीठुन नही। इसी लीला

के रस में मत्त रहने के कारण श्रीशुकदेव जी अनाध गति से सत्र परिभ्रमण करते हैं तथा सव-मौन्दर्य-सम्पन्न श्रीरुन्दावन भी जडता धारण किए हुए है। मिह तथा मृग आदि पशु एक दूसरे के विरुद्ध होने पर भी, भगवान् की लीला के प्रभाव में आकर क्राम, क्रोध, मद, लोभ में रहित होकर एक साथ सचरण करते हैं। भगवान् कृष्ण के प्रियोग में भी यही 'मन हरन लीला' गोपियां को सच्चिदानन्दस्वरूप का अनुभव कराती है। वे इसमें तमय होकर सयोग प्रियोग का अपना सत्र सुगन-दुगन भूल जाती हैं।

शास्त्रों में परब्रह्म परमात्मा का "रसो वै स" बरके निर्वचन किया गया है। हमारे भक्त कवियों ने भी श्रीकृष्ण को षोडशरत्नापुष्प परब्रह्म माना है। इसलिये श्रीकृष्ण में भी सत्र रसों की

रास

अभिव्यक्ति करके उसको रासलीला—नृत्यसगीत—

इत्यादि के रूप में प्रकट किया है। श्रीधर स्वामी ने "रसाना समूहो रास" कहकर उपर्युक्त भाव को ही दर्शाया है। भगवान् कृष्ण ब्रज गोपिनाथों का मण्डल गाँधकर यमुना किनारे शरच्चन्द्रिका में सगीत नृत्य करते थे। श्रीगुरुभावाय जी ने अपनी सुगोविनी टीका में "बहु नर्तकीयुक्तो नृत्यनिशेयो रास" कहकर यही अभिप्राय प्रकट किया है। सत्र गोपिनाथ रस के त्रेद्रम्वरूप रसिकशिरोमणि के अन्तर से प्रसने चाले प्रेमरस में मत्त होकर इसी "रास" के अपूर्व आनन्द का अनुभव करती हुई तल्लीन हो जाती थीं। वर्तमान समय में रासक्रीडा में लोग अश्लीलता का अनुभव करने लगे हैं। परन्तु इससे हम नहीं कह सकते कि गचमुच ही यह क्रीडा कामोत्तेजन या अश्लील है। वास्तव में श्लीलता और अश्लीलता का भाव अपने अपने मनोनिशारा पर निभर है। यदि हम अपने मनोनिशारा को शुद्ध करके श्रीकृष्ण का परब्रह्म स्वरूप मानकर, रास और गोपियों को उनकी अनन्य भक्त मानकर—रासक्रीडा को देखें और उसमें भक्ति का ही स्वरूप अवलोकन करके सात्विक रमण करें, तो यह असम्भव नहीं है। साहित्य के

उद्भट आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्त रास की जो व्याख्या दे रहे हैं, उसको देख कर तो आजकल के श्लीलता के समर्थक और भी अधिक नाक-भौं सिकोटेंगे। वह व्याख्या इस प्रकार है —

नृत्यगीतचुम्बनालिङ्गनात्पीना रमाना ममूहो रासस्तन्मयी या क्रीडा  
ताम् अनुव्रतैस्तदानीं परस्परैकमत्येन स्वानुकूलैः । अन्योऽन्यमाबद्धा  
सम्प्रथिता याह्वो यैस्तेस्मह रास ॥

अर्थात् आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्त के मत से केवल उहुत सी नर्तकियों के साथ नृत्य विशेष को ही रास नहीं कहना चाहिए, बल्कि इस रास में नृत्यगीत और आलिंगन-चुम्बन तक का समावेश किया गया है। इसमें नर्तक और नर्तकिया दोनों एक दूसरे से अनुव्रत, एकमत और परस्पर अनुकूल होकर और एक दूसरे से ग्राहुगुफित हो परस्पर आनन्द होते हैं। इतना होने पर भी उस रास में उनको अश्लीलता दिखाई नहीं देती। फिर इस रासमंडल में केवल एक मात्र नटनागर श्रीकृष्ण का ही अन्तर्भाव नहीं है, किन्तु श्रीकृष्ण के अतिरिक्त उनके अन्य सम्गा भी सम्मिलित रहते हैं। रास का सामूहिक आनन्द अनेक पुरुष नट और अनेक स्त्री नर्तकिया मिलकर प्राप्त करती हैं। जीव गोस्वामी के मत से एकाधिक पुरुषों का रास में सम्मिलित रहना सिद्ध है। आप कहते हैं —

नटैर्गृहीत कण्ठीनामन्योन्यात्तत्करस्त्रियाम् ।

नर्तकीना भवेद्रासो मण्डलीभूय नर्तनम् ॥

इस प्रकार के रास में अनेक नट और अनेक नर्तकिया परस्पर एक दूसरे के गले में हाथ डालकर और बायों में हाथ डालकर मण्डलाकार नृत्य करती हैं। इस रासकीड़ा को यदि पश्चिमी देश के डांस Dance की उपमा दी जाय, तो इसमें अश्लीलता का आरोप किया जा सकता है, परन्तु कृष्णभगवान्, जिनको निःशर्क भागवतधर्म में पोटशमलापूर्णा साक्षात् परब्रह्म माना गया है, उनकी उपस्थिति में तो इसको भक्तिरास

का एर मुन्दर और मात्किर दृश्य ही रुहा जायगा । महाकनि नन्द-  
दास जी ने भी अपनी रास पचाध्यायी में इसी रास का अद्भुत वर्णन  
किया है —

जो मजदेवी निरतति मंडल रास महाद्युधि ।  
सो रस कैसे बरनि मकै ऐमो है सो करि ॥  
प्रीत प्रीव भुज मेलि केलि कमनीय बड़ी अति ।  
लटकि लटकि मुरि निरतति कापै कहि आवति गति ॥  
धुनि सौं निरतनि लटकनि मटकनि मडल डोलनि ।  
कोटि अमृत सम मुसिकनि मजुल ता धेइ बोलनि ॥

रा० प० अ० १, २६ २८

रासलाजा का प्रभाव वर्णन करते हुए नन्ददास जी कहते हैं —

अप अपनी गति भेद, सबै निरतनि लागी जय ।  
मोहे गंधरय ता छिन, मुन्दरि गान कियो तय ॥

रा० प० अ० १—३०

राम लीला में गोपिया का गान सुन कर रागी गानवों के मोहित हो  
जाने में काइ आश्चर्य की बात नहा, किन्तु यहाँ तो विरागी मुनि तक  
उसे सुन कर मोहित हो जाते हैं । इतना ही नहा, जब 'शिला' तक  
उसे सुनकर 'सानल' में और 'सलिल' 'शिला' में परिवर्तित हो जाता  
है । नायु, शशि, आमाश स्थित समस्त नक्षत्र तथा सूर्य तक उसे सुनने  
के लिए विरम जाते हैं—

अद्भुत रस रब्यो राम, गीति धुनि मुनि मोहे मुनि ।  
शिला सलिल है गई, सलिल है गयी सिखा पुनि ॥  
पवन धरयो, समि धरयो, धरयो षडु मडल सगरौ ।  
पाछे रमि रथ धरयो, धरयो नहिं आगे डगरौ ॥

रा० प० अ० १—४४, ४५ ।



इस रासलीला के अद्भुत रस का वर्णन कौन कर सकता है ? अपने सहस्र मुखों से गाकर भी अब तक शेष पार न पा सके । अत्यन्त शान्त भाव से शरर मन ही मन इसका ध्यान करते हैं तथा 'सनरु' 'सनन्दन' 'नारद' एव शारदा को भी यह लीला अच्छी लगती है । यद्यपि लक्ष्मी भगवान् के कमल चरणा की रात्रिदिन सेवा किया करती हैं, निन्तु उन्हें भी स्वप्न तक में इसका आनन्द नहीं मिला —

यह अद्भुत रस रास कहत कछु कहि नहिं आवै ।

सेस सहस मुख गावै, अज हूँ पार न पावै ॥ ६७

सिख मनही मन ध्यावै, काहू नहिं जनावै ।

सनरु, सनन्दन, नारद, शारदा अति मन भावै ॥ ६८ ॥

यद्यपि हरि-पद-कमल, सु कमला सेवति निस-दिन ।

तद्यपि यह रस सपने, क्यहूँ नहिं पावै तिन ॥ ६९ ॥

रा० प० अ० २

इससे पाठकों को मालूम हो जायगा कि नन्ददास जी की रासविषयक कल्पना कितनी व्यापक है । श्रीकृष्ण और गोपिकाओं का "रास मडल" उनके लिए केवल ब्रजमडल की ही 'वस्तु' नहीं है, बल्कि "आसण्ड-मण्डलाकार व्याप्त येन चराचरम्"—उनका "राम" स्वयं सच्चिदानन्द का स्वरूप बनकर चराचर को रस आनन्द-पहुँचाने के लिए उमड रहा है ।

वेद, उपनिषद् और पुराणों तक में शब्दब्रह्म की महिमा का वर्णन किया गया है । पौराण्य दर्शन में शब्द को साक्षात् परब्रह्म ही माना

गया है । हमारे यहां के साधारण गवैये भी "गद्गद्गद्गद्" की महिमा जानते हैं । आजकल पौराण्य दर्शनशास्त्र

से पूर्णतया अनभिज्ञ और पश्चिमी विचारों का ग्रन्थ अनुकरण करने वाले हिन्दी लेखक 'शब्द' की अपेक्षा 'अर्थ' को अधिक महत्व देने जा रहे हैं, परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय, तो 'शब्द' के बिना 'अर्थ' का बोध ही नहीं हो सकता—'अर्थ' तो शब्द के पीछे पीछे

दौड़ने वाली वस्तु है। नन्ददास जी ने इस तत्व को भली भाँति समझ लिया था, और इसीलिए उन्होंने 'मुरली' को "नादब्रह्म की जननि" कहकर वर्णन किया है —

सब लीनों कर-रमल जोग-माया सी मुरली ।  
 ध्वजित घटना चतुर, बहुरि अधरन रस जुरला ॥  
 जाकी धुनि हैं अगम, निगम, प्रगटे बड नागर ।  
 नाड ब्रह्म की जननि माँहनी सन-सुग सागर ॥

रा० प० अ० १—२२, २६ ।

परब्रह्म रूप भगवान् कृष्ण 'स्वर' की मोदिनी भाया से ही सम्पूर्ण चराचर विश्व को प्रमोहित कर रहे हैं। मुरली का स्वर श्रीकृष्ण के अधरन रस रमपान कर के विश्व में श्रौर भी अधिक उन्मत्तता उत्पन्न कर रहा है। विश्व का सारा ज्ञान, आगम, निगम, सब उसी स्वर से उत्पन्न होकर चराचर को संचालित कर रहा है।

प्रज्ञा-चक्षु सुर ने तो मुरली का श्रौर भी रमणीय चित्र खींचा है—

सुनहु हरि मुरली मधुर बजाइ ।

मोहे सुर नर नाग निरतर ब्रज बनिता सब घाई ॥

जमुना तीर प्रवाह थकित भयो पवन रह्यो उरमाई ।

खग मृग मीन अधीन भये मत्र अपनी गति बिसराई ॥

हुम बह्नी अनुराग पुलक तनु, ससि रह्यो निसि न घटाई ।

सुर स्याम मृन्दावन विहरत चलहु चलहु सुधि पाई ॥

श्रीकृष्ण की बशी बज उठी। उसकी सुन्दर स्वरलहरियाँ उठ उठ कर दसा दिशाश्र्या में फेलनी लगी। नादब्रह्म के आनन्द में निमग्न होकर सारी सृष्टि डालने लगी। सुर नर नाग सब मोहित हुए। ग्वाल बाल श्रौर गौर्न जगल म जहा जहाँ जिस दशा में थीं, वैसी ही चल पडी। गोपिया भी घरों में अपना कामकाज जैना न तैसा छोड़कर उठ दौड़ा। वायु जो सुगंध श्रौर शीतलता के भार से धीरे धीरे चल

रहा था, उस मधुर मनोहर स्वर को सुन कर अटक रहा। वृक्ष और लताएँ अनुराग से पुलकित हो उठी। यमुना तीर का प्रवाह थकित सा हो रहा। राग मृग मीन इत्यादि सब अपनी सुधुध भूल कर मोहित हो गये। आकाश में चन्द्रमा भी नादमुग्ध होकर ठहर गया। वह भी वशी की तान में उलझ रहा। सब जीवसृष्टि और जडसृष्टि नादब्रह्म के आनन्द में नम्र होकर उसी में मिलजुल तल्लीन सी हो गई। मुरली की माया ऐसी ही है। श्रीकृष्ण की मुरली इस प्रकार जब सारी सृष्टि को विमोहित कर रही है, तब जब की गोपिया का चित्त यदि वह इस तरह हरण कर लेवे कि वे उद्वेग के प्रवृत्त ज्ञानध्यान बतलाने पर भी कृष्ण के प्रेम में ठगी सी बनी रहें, तो हममें क्या आश्चर्य—

फान ब्रह्म की जाति ज्ञान कासा कहो ऊधो ?

हमरे सुन्दर स्याम प्रेम को मारग सूधो ॥

नैन बैन सुति नासिका मोहन रूप लप्ताय ।

सुधिसुधि सब मुरली हरी प्रेम-ठगौरी लाय ॥

सत्ता सुनु स्याम के ।

—भं० गी० ८

मुरली स्वर में गोपिकाओं को श्रीकृष्ण के अधरामृत का प्रेमरस पान करने को भी मिलता है। श्रीकृष्ण के जूठे अधरामृत में वे अपने को लीन करती हैं—वे एक रूप हो जाती हैं। भक्ति की यह परामाथा है। हमी में पागल होकर कृष्णाययोग में गोपिकाएँ अचानक उड़ उठती हैं—

अजहूँ नाहिन कछु धिगर्या रचक पिय आवौ ।

मुरली को जूठो अधरामृत आइ पियावौ ॥

रा० प० अ० ३—१६

साराश यह है कि नन्दनाम जी ने मुरली के वर्णन में परब्रह्म का स्वरूप दिखलाकर निर्गुणभक्ति की ओर इशारा मात्र किया है। वास्तव में तो सगुण भक्ति की मूर्तिमान प्रतिमा गोपिकाओं के आधार में उद्धाने

मुरली को माना है। कई भक्ता ने तो जिस प्रकार गोपिकाओं को ऋण का अधरामृत पान कराया है, उन्हीं प्रकार मुरली के निषय में भी कहा है और इस तरह गोपिकाओं और मुरली में सीतिया डह भी पैदा करा दिया है। मुरली की महिमा ही निश्चित है।

नन्ददाम जी ने अपनी राम-यन्त्राध्यायी तथा भँवर गीत ब्रजभाषा में लिखा है। यह शौरसेनी अक्षर श की उत्तराधिकारिणी है। मय-काल में ब्रजभाषा ही साहित्य की एक सामान्य भाषा थी, जिगका प्रयोग समस्त हिन्दी कवियों ने किया है। राजपूताने में यह भाषा 'विङ्गल' नाम से प्रख्यात थी। सोलहवीं शताब्दी के पूर्वोक्त निरामी कवियों ने भी साहित्य में इसका प्रयोग किया है। नन्ददाम भी सम्भवतः पूरव के रहने वाले थे, अतएव आपकी ब्रजभाषा में अक्षरी, भोजपुरी इत्यादि प्रांतीय भाषाओं के शब्द भी कहा कहा मिलते हैं—

जैसे 'है' की जगह अक्षरी का 'गाहि' और 'होयगो' की जगह 'होइ' इत्यादि क्रियाओं का प्रयोग पाया जाता है। नन्ददास ने भोजपुरी के 'राउर' सर्वनाम का भी प्रयोग भँवरगीत में किया है। ग्नी बोली के 'आप' की तरह भोजपुरी मयम पुरुष, एतन्त्रा में आदर प्रदर्शन के लिए 'रउआ' अथवा 'रउएँ' का प्रयोग होता है। अक्षरी तथा ब्रजभाषा में इस सर्वनाम का प्रयोग नहीं होता। सम्बन्धकारण में 'रउआ' का रूप 'राउर' हा जाता है और इसी से नन्ददास ने इस रूप को ग्रहण किया है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कवितावली के 'राउर दीप न पायन को' में इस शब्द का प्रयोग किया है।

नन्ददास की रचना में विदेशी शब्दों का प्रायः अभाव है। पञ्चागाथा में आपने अक्षरी के 'लायक' तथा 'गार' शब्द के परिवर्तित रूप "लाइक" तथा 'गाग' को ग्रहण किया है जो ध्वनि परिवर्तन के नियम के सर्वथा अनुकूल है।

संस्कृत की फोमलकान्त पदावली का जितना सुन्दर प्रयोग नन्ददास ने अपने काव्य में किया है उतना सम्भवतः अन्य किसी भाषा कवि ने नहीं किया है। रास-पंचाध्यायी की भाषा पर तो श्रौमद्भागवत की भाषा का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इसका एक मात्र कारण यही कहा जा सकता है कि आपको अपने गुरु से, तथा स्वतंत्र रूप से, अनेक बार भागवत पुराण को अध्ययन करने का अवसर मिला था। अवश्य आप को इसके बहुत से श्लोक कठोर होंगे। इसी कारण से तत्सम शब्दों का ही आपकी रचना में आहुल्य है। उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त आपने दो स्थानों पर 'वदति' तथा 'चुनति' क्रियाओं को भी तत्सम रूप में ही रखा दिया है। इसी प्रकार के प्रयोगों से कुछ विद्वान् नन्ददासजी की कविता को जयदेव कवि के 'गीतगोविन्द' का अनुयायी तक मानने लगे हैं।

अस्तु। नन्ददासजी की प्रासादिक कविता का माधुर्य और रस इत्यादि को देखकर ही सर्वसाधारण में यह जनश्रुति प्रचलित हो गई है कि—

“और सब गढ़िया, नन्ददास जड़िया।”

अर्थात् अन्य कविता की रचना में जो सौष्ठव और स्वारस्य नहीं पाया जाता, वह नन्ददासजी की कविता में मिलता है। छन्द की गति को ठीक रखने के लिए आप के पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कवियों ने शब्दों को खूब तोड़ा मरोड़ा है, जिसका एक परिणाम यह हुआ है कि भाषा में दुरूढ़ता आ गई है। नन्ददास की भाषा में यह दोष नहीं है। आप के शब्दों के परिवर्तन ध्वनि शास्त्र के नियमों के अनुकूल होने के कारण अत्यन्त स्वाभाविक उन पड़े हैं। जैसे—लछमी ( लक्ष्मी ), अपछरा ( अप्सरा ), गन्धर ( गन्धर्व ), झम ( श्रम ), अन्तरजामी ( अन्त-र्यामी ), धरम ( धर्म ), जोवन ( यौवन ), मारग ( मार्ग ) आदि।

भाषा को टफ़लाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें प्रचलित शब्दों, मुहावरों और कहावतों का प्रयोग किया जाय। नन्ददास

नी ने भी 'राम-पचायायी' तथा 'भँवरगीत' में प्रचलित मुहावरों तथा लोकोक्तियाँ का प्रयोग किया है। पचायायी की अपेक्षा भँवरगीत में मुहावरों का अधिक प्रयोग हुआ है। इसका भी एक कारण है। भँवरगीत वास्तव में एक उपालम्भ-नाम्न-ग्रन्थ है और जब पारस्परिक-वातालाप में उपालम्भ अथवा व्यङ्गात्मक शली का उपयोग किया जाता है तो मुहावरों का प्रयोग अधिक होता है। नन्ददासजी ने तीन मुहावरों का उपयोग अपनी कविता में किया है उनमें से कुछ का प्रयोग प्रान्त-विशेष में ही होता है। जैसे 'मनमूमना' (मन चुराना) में पूर्वी अथवा तथा भोजपुरी की 'पष्ट छाप है। आप के शेष मुहावरों का प्रयोग प्रायः सर्वत्र होता है—जैसे धूल समेटना (साक छानना), इन्द्रियाँ को मारना (इन्द्रियों को बरस म करना), लोभ की नाव होना (प्रत्यन्त लोभी होना), बेकारी काटना (अर्थ नगन होना), पी का पट पाना (मोक्ष पाना) इत्यादि। आपकी लोकोक्तियाँ का प्रयोग तो प्रायः सर्वत्र ही होता है। जैसे 'धर आयो नाग न प्रतिये रॉरी पूवन जाहि', 'जल दिन रहो जैसे तिय, गरिब चल की मीन' इत्यादि।

भाषा को रसातुल्य बनाने के लिए कवि को तीन गुणों का ध्यान रखना पड़ता है। वे हैं माधुर्य, योज और प्रसाद। तिन गुणों से चित्त-द्रवीभूत हो कर आह्लादित हो, उसे माधुर्य कहते हैं। यह गुण सवाग-वृद्धार से उत्पन्न होता है, कारणों में प्रियाग-वृद्धार में और प्रियोग-वृद्धार में शान्त मन में अधिनाधिक होता जाता है। तिन गुणों में श्रुतिमधुर पद विनायक रूप में होते हैं, उनमें माधुर्यगुण विशेष माना जाता है। काव्य में विशेष कर टनग-श्रुति मृदु माना गया है। यतएव यह माधुर्यगुण का विधातक है। नीचे न द्वादश की की कविता का माधुर्यगुण-सुख एक उदाहरण दिया जाता है—

नूपुर, करन, किंपिनि, करनल मजुल-मुरला । ११ ॥

नाल, मृग, उपग, घग, पवटि मुर जुर्ली ॥ ११ ॥

मृदुल मुरज टकार, ताल ऋकार मिली धुनि ।

मधुर जत्र के तार भँवर गुंजार रली धुनि ॥ १२ ॥

रा० प० अ० २

जो गुण चित्त का उद्दीपन कर के उसको विशाल बनाता है, उसे योज कहते हैं । वीर, वीभत्स और रौद्र रस में क्रमशः इसकी अधिकाधिक स्थिति रहती है । द्वित्त्वर्ण, सयुक्तवर्ण, अर्द्ध रकार, टवर्ग एव लम्बे लम्बे समास युक्त पद, योजगुण की व्यञ्जना करते हैं । शृङ्गार रस की प्रधानता होने के कारण नन्ददाम की कविता में इस गुण का प्रायः प्रभाव है । फिर भी नीचे एक उदाहरण दिया जाता है —

✓ पवन थक्यौ, ममि थक्यौ, थक्यौ उडुमडल सगरौ ।

पाछें रवि रथ थक्यौ, चर्यौ नहिं आगें डगरौ ॥ ४५ ॥

रा० प० अ० २

प्रसादगुण की स्थिति सभी रसों और सारी रचनाओं में हो सकती है । प्रस्तुत माधुर्य और योजगुण का सम्बन्ध प्रायः शब्द के साक्षरूप से होता है, किन्तु प्रसाद का सम्बन्ध उसके अर्थ में है । अतएव काव्य की जिस भाषाशैली में उभरा अर्थ सहज हृदयङ्गम हो जाय, ऐसा सरल और सुगंध पद प्रसादगुण-युक्त होता है । नन्ददास की रचना में यह गुण विशेष रूप से विप्रभा है । उदाहरणार्थ कुछ पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं —

है गई विरह बिकल सब पूँछति हुम बेली बन ।

को जड़, को चैतन्य न जानत कछु विरही जन ॥ २ ॥

हे मालति ! हे जाति जूथके ! मुनि हित दै चित ।

मान हरत मन हरन लाल गिरधरन लखे इत ॥ ६ ॥

अहो असोक ! हरसोक, लोकमनि ! पियाहि घतावहु ।

अहो पनम ! सुग-मनस मरति तिय अमिय पियावहु ॥ १६ ॥

जमुना तट के बिटप पूँछि भई निपट उदासी ।

क्यौ कहिहैं सगि ! महा कठिन तीरथ के बासा ॥ १७ ॥

रा० प० अ० २

गस-पचाध्यायी तथा भेंवरगीत के काव्य-गुणों का विवेचन ऊपर किया जा चुका है, अब यहाँ पर रसा का विवेचन किया जाता है।

रस वास्तव में काव्य के उपर्युक्त तीनों गुण रस के धर्म हैं। काव्य में रस ही मुख्य एवं सर्वोपरि वस्तु है।

यही कारण है कि आचार्यों ने इसे काव्य की आत्मा कहा है। रस नव हैं—शृङ्गार, हास्य, करुण, रोद्र, वीर, भयानक, वाभत्स, अद्भुत और शान्त। कुछ साहित्याचार्यों ने इन नव रसा के अतिरिक्त वाल्मल्य और भक्ति आदि कुछ और भी रस माने हैं। किन्तु आचार्य मम्मट के अनुसार रसा ही मरुता नव ही है और वाल्मल्य और भक्ति जो क्रमशः पुनादि त्रिपयस रति भाव में और भक्तिरस को देव त्रिपयस रति भाव के अन्तर्गत मानना चाहिए। अत्यन्त व्यापक होने के कारण आचार्या ने शृङ्गार को 'रसरज' माना है। नन्ददास भी रचना में प्रधान रूप से शृङ्गार तथा गौण रूप से करुण रस की अभियोजना हुई है। शृङ्गाररस को भी सयोग शृङ्गार तथा निमलम्भ शृङ्गार, इन दो भागों में विभक्त किया जाता है। सयोग शृङ्गार भी नरों तायिकारब्ध तथा नहीं नायकारब्ध होता है। जहाँ नायिका के द्वारा उपनम होता है वहाँ तायिकारब्ध तथा जहाँ नायक के द्वारा उपनम होता है वहाँ नायका रत सयोग शृङ्गार होता है। तायिकारब्ध सयोग-शृङ्गार का एक बहुत ही उत्तम उदाहरण नीचे दिया जाता है —

उज्जल मृदु बालुबा पुलिन अति मरस मुदाइ ।

जमुना जू निज कर तरंग करि आधु बनाइ ॥ १०२ ॥

बैठे तहँ सुन्दर मुजान सय सुख निधान हरि ।

बिलसत विविध तिलाम हाम रस हिय हुलास भरि ॥ १०३ ॥

परिभन सुख सुम्यन छय कुछ गौरी परसत ।

मरमत प्रेम अनग रग नय घा जूँ वरसन ॥ १०४ ॥



ऊर के पद म रग के चारो अंग हाट परिलनित हैं । प्राना  
 (न्यासीभाव रति है । कृष्ण तथा गोपिकायें आलम्बाय विभाव, उज्वल  
 (यमुनातट उद्दीपना, परिरभा, गुणचुम्बन आदि अनुभाव तथा मम्मिलन  
 गुण मे उत्पन्न हय अभिचारी भाव है । यदा उपक्रम श्रीकृष्ण ने किया  
 है अत यह नायवारब्ध मयोग शृङ्गार हुआ ।

त्रिप्रलभ शृङ्गार तो आचाया ने अभिलाषा हेतुक, अर्था हेतुक,  
 प्रिरा हेतुक, प्रनास हेतुक तथा शाप हेतुक, इन पांच भागा म विभक्त  
 किया है । नीचे प्रवाम श्रुत त्रिप्रलभ शृङ्गार का एक बहुत ही उत्तम  
 उदाहरण दिया जाता है । इनम कृष्ण के अन्तधान हो जाने पर  
 गानिया की प्रलाप-दशा की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यञ्जना हुई है —

हे चन्दन ! दुग्ध दन्दन ! मय की जरती जुड़ावों ।  
 गैठ-नदन, जगयदन, चन्दन हमहि यतावों ॥ १० ॥  
 पूछौरी ! इन लतन, फूलि रहीं फूलन जोड़ ।  
 सुन्दर पिय के परमि गिना, अस फूल न छोड़ ॥ ११ ॥  
 अहो पवन ! मुभ गगन सुगंध सँग थिर जु रही चलि ।  
 दुख दवन, सुख भवन खन कहे तैं धितण चलि ॥ १२ ॥  
 अहो चपक यह कुसुम ! तुमहि छथि सय सौ न्यारी ।  
 नैकु यतायहु अहो ! जहाँ हरि कुंठ थिहारी ॥ १४ ॥

रा० प० अ० २

निगलिग्लिठ पदा म कवि ने कृष्णरस का अत्यन्त मनीष चित्र  
 उपरि उत किया है —

प्रनत मनोरथ करन, चरन सरसीन्ह पिय के ।  
 का घटि जैहे नाथ ! हरत दुख हमरे जिय के ॥ ८ ॥  
 कइँ हमारी प्रीति कहाँ पिय ! तुम निठुगई ।  
 मनि पयान सौ खँ, ठई तैं कछु न बसाई ॥ ९ ॥  
 जय तुम कानन जात सहस जुग सम धीतत धिनु ।  
 दिन धीतत जिहि भाँति हमहि जानत पिय तुम थिनु ॥ १० ॥

पुनि कानन तँ आपत सुन्दर आनन देख ।

तहँ बिधना अति धूर करी पिय । नैन निमोर्षे ॥ ११ ॥

रा प० अ ३

रास पचाध्यायी को समाप्त करत समय नन्ददाम जी ने शान्तरम  
का सुन्दर चित्र रचा है —

स्वप्न कीरतन ध्यान सार सुमिरन को ह पुनि ।

ध्यान सार हरि ध्यान सार स्तुति सार गुही गुनि ॥

अथ हरनी मन हरनी, सुन्दर प्रेम वितरना ।

“नन्ददाम” के कठ बसा, तित मंगल करनी ॥

“रामपचाध्यायी” में तो श्रावण और गोपिकाओं का नाम का ही प्रत्यक्ष रूप से उल्लेख है परन्तु नन्ददास जी ने “राम” शब्द का व्युत्पत्ति पर ध्यान रखते हुए प्रायः राज्य के समाप्ति का प्राक्किकार भी ठौर ठौर पर दिखलाया है। हा ‘भरणी’ में नन्ददाम ने हास्यरम को भी चतुरता में चित्रित किया है। प्राचीन काल से हा मूल तथा उनकी मूर्धनतापण गों नस्यरम का आलोकन री है। नन म चार उद्धन नयुपतियो का अद्वतवाद की शिन्ता देना आरम्भ करन है। उनका उन प्रसार का आचरण उद्धय श्री गारिना की दृष्टि न मृगतापण है। आण्य गोपियाँ भी व्यङ्गार्भित पाता म उन्द् मूर बनाता है। नान म अग हास्यरम का पोपन भी माना गया है। नीचे उदाहरण स्वरूप उतिपय पत् उद्धृत किए जात है —

✓ कोउ कहँ “अहो मधुप ! स्वाम जाको तुम चेला ।

तुजजा तोरथ जाय कियो इन्डिन को भेला ॥

मधुवन सुधि निमराय के आये तोडुन माहि ।

इहा भवै प्रेमा बस तुमरा गाहक नाहि ॥

पधारो राउरे ॥ १० ॥

कोउ कहँ “र मधुप ! नाउ मधुवन के एम ।

आर तहों के मिद लोग हूँ हैं घो कँमे ?

श्रवण गुण गहि लेत हे गुण को डारत मेटि :

मोहन निर्गुन को गहे तुम साधुन को भेंटि ।

गाँठि कौ खोय के ॥ १८ ॥

उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को मालूम हो जायगा कि नविवर नन्ददास की रचना केमी रस है और भिन्न भिन्न रसों का प्रातिर्भाव आपने अपनी कविता में किस प्रकार किया है ।

उस्तु वर्णन तथा काव्य के उत्कृष्टता प्रदर्शन में गुण और अलंकार दोनों की प्राप्ति पढ़ती है । रस तो, जैसा ऊपर कहा गया है,

भाव की आत्मा ही है । अब गुण और अलंकार

अलंकार

के अन्तर को भी स्पष्टरूप में जान लेना चाहिए ।

वास्तव में गुण रस के धर्म हैं, क्योंकि वे सदैव रस के साथ रहते हैं, किन्तु अलंकार रस का भाव छोड़कर नीरम काव्य में भी रहते हैं । इसके अतिरिक्त गुण सदा रस का उपकार करते हैं, किन्तु अलंकार रस के साथ रहकर कभी उपकारक होते हैं और कभी अपकारक ।

अलंकार के भी साधुगुणतया दो भेद हैं—शब्दालंकार और अर्थालंकार । नन्ददास की कविता में दोनों प्रकार के अलंकार मिलते हैं । शब्दालंकार में अनुप्रास मुख्य है । नीचे रास-वचाध्यायी से अनुप्रास के उदाहरण दिए जाते हैं —

कृपा-रग-रस ऐन नैन राजत रतनारे ।

कृ ण-रसासव-वान अलस कडु घूम घुँमारे ॥ १ ॥

श्रवण कृ ण-रस भरन गड-भटल भल दरसे ।

प्रेमानंद मिलि तासु मन्द-मुसिकन मधु बरम ॥ ६ ॥

रा० प० अ० १

इत महकति मालती धारु चपक चित चोरत ।

उत घनमार तुमार मिली मशर म्कोरत ॥ ११८ ॥

इत लवग नर-रग एलची भेलि रही रस ।

उत कुरवक, केवरी, खेतकी गध-यध रस ॥ ११६ ॥

रा० प० अ० १

नैन धैन मन प्रान में मोहन गुन भरपूरि ।

प्रेम पियूपे छाडि कै कौन समेटै धरि ॥

भै० गी० १२

अथालकार म नन्ददास जी ने उपमा, अनन्वय, रूपर तथा उत्प्रेता का विशेष रूप से प्रयोग किया है। इनमें भी उत्प्रेता का प्रयोग अत्यधिक परिमाण में हुआ है। अथ इन अलकारों के पारस्परिक सम्बन्ध को भी तनित्र समझ लेना चाहिए। उपमालकार में उपमेय और उपमान की समता करके उपमेय का उत्प्रेत रखा जाता है, रूपर में अभेद आरोप करते। अनन्वय मता उपमेय को ही उपमानता प्राप्त हो जाती है, किन्तु उत्प्रेता म उपमेय को उपमान से भिन्न जानत हुए भी उलपूर्वक प्रधानता ने साथ उपमेय म उपमान की सम्मानना की जाती है। अथ क्रमशः इनके उदाहरण नीचे दिये जात हैं —

( १ ) उपमा—

सुधर सौंदरे पिय सँग, निरवति थौं प्रज जाला ।

ज्यो घन मडल मजुल खेलति दाभिनी माला ॥ १४ ॥

रा० प० अ० २

( २ ) रूपर—

नय मरकत मनि स्याम, कनक मणि मन ब्रजवाला ॥ १० ॥

रा० प० अ० १

( ३ ) अनन्वय—

या प्रन की थर थानक, या बनही बन आनै ॥ २६ ॥

रा० प० अ० १

( ५ ) उत्प्रेक्षा—

गोरे तन की जोति दूदि ज्युधि छाड रही घर ।

मानो ठड़ी सुभग कुँवरि, कचन अवननी पर ॥ ४२ ॥

घन त बिछुरि धीछुरी जनु मानिनि-तनु फाँड़े ।

किरो चड माँ रुमि, चन्द्रिका गहि गई पाछे ॥ ४३ ॥

रा० प० अ० २

गम पचाध्यायी की रचना नन्ददाम जी ने रोला छन्द में की है ।  
 इस छन्द के प्रत्येक चरण में चौबीस मात्राएँ होती हैं और यति गारह  
 और तेरह पर होती है । इस नियम के अनुसार

छन्द

पचाध्यायी के त्रिपय पदों में यतिभंग दोष ग्रा जाता  
 है, किन्तु नन्ददास जी की ममस्त रचिता पदने में गायक यह परिणाम  
 भी निम्नाला जा सकता है कि आपने छन्दों के अतर्गत यति और  
 मात्राया इत्यादि की गणना की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है । जैसे  
 कि प्रायः गायक लोग किसी भी प्रकार के छन्द को सीचतान कर  
 अपने सगीत के ताल-स्वर में ढेरा लेते हैं वैसे ही नन्ददास जी के छन्दा  
 में भी कई जगह पाया जाता है । अग्रश्य की नन्ददास जी केशवदास  
 की तरह छन्दशास्त्र और विंगलशास्त्र के बहुत उठे पडित नहीं जान  
 पडते, परन्तु उनकी रचना में छन्द की गति, शब्दा के लालित्य और  
 उदा की रचना में सगीत तो अग्रश्य पाया जाता है, और अटछाप में  
 प्रायः सभी त्रिपय सगीत के आचार्य माने जाते हैं । नन्ददास जी की  
 ममस्त रचना से ही उनकी सगीतप्रियता का पूर्ण परिचय मिलता है ।

नन्ददास जी ने अपने भँवरगीत की रचना जिस ढंग के छन्द में  
 की है, उससे उनकी सगीतपटुता का बहुत अच्छा प्रमाण मिलता  
 है । भँवरगीत की रचना आप ने एक मन्त्र प्रकार के छन्द में की है ।  
 इसके प्रत्येक छन्द में प्रथम रोला के दो पद, फिर दोहे के दो पद और  
 अन्त में दस मात्राओं की एक टेंक रानी गड़ है । रोले और दोहे की  
 संयोजना में नन्ददास जी का सगीत वैचर्य प्रकट होता है, क्योंकि

रोला और दोहा, दोनों छन्दों में चौबीस ही चौबीस मात्राएँ होती हैं, और दोनों छन्दों की रचना यति के हिसाब से भी एक दूसरे से उलटी पड़ती है। इसलिए रोले की दो लाइनों के बाद ही दोहे की दो लाइनें रख देने से भँवरगीत का छन्द बहुत ही भावोत्पादन और संगीतमय बन गया है। इसके साथ ही दम मानवाली अन्तिम टेक के मिलने से गोवियाँ और उद्वेग के उत्तरप्रत्युत्तर की तरगावली में संगीत की एक अपूर्ण हिलोर पैदा हो रही है।

“भँवरगीत” नाम में ही प्रकट होता है कि यह कविता “गीतिनाव्य” है, और नन्ददास जी ने इसको संगीत के ढंग पर ही छन्दों में बैठाया है। इसका सन से उदा प्रमाण भँवरगीत के प्रारम्भ की दो पक्तियाँ हैं —

ऊँची को उपदेश सुनो ब्रजनागरी ।  
रूप सील लावन्य सबै गुण आगरी ॥

भँवरगीत के प्रत्येक ‘गीत’ की प्रथम दो लाइनें रोला छन्द की हैं। फिर भी नन्ददास जी ने इन गीतिनाव्य की सनप्रथम दो लाइनों, चौबीस मात्राओं के रोला में न रखकर, उपर्युक्त प्रकार से, इक्कीस मात्राओं की ही क्यों रखा? हमारे इस प्रश्न का उत्तर सम्पूर्ण पुस्तक की “सुनो ब्रजनागरी” इस टेक में मौजूद है। अर्थात् इस गीतिनाव्य के प्रारम्भ की दो लाइनों मानों सम्पूर्ण भँवरगीत के “अन्तरा” के रूप में रची गई हैं। जैसे कोई भी पद गाते समय उसका अन्तरा बार बार गाया जाता है, वैसे ही भँवरगीत को भी कवि ने गाने की चीज़ बना दिया है। मारांश यह है कि नन्ददास जी ने भँवरगीत की छन्दरचना में अत्यन्त कौशल से काम लिया है, और इससे इस काव्य का माधुर्य बहुत ही बढ़ गया है।

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने अपने अमर काव्य में प्रकृति का अत्यन्त मनोरम चित्र उपस्थित किया है। कालिदास की उपमाओं में नन्ददास का प्रकृति चित्रण भी अम सुन्दर नहीं। शकुन्तला में आश्रम का योग कुमार-सम्भव के प्रारम्भ में हिमालय का जैसा सुन्दर चित्र खींचा गया है, वैसा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। हिन्दी के प्राचीन कवियों का ध्यान प्रकृति वर्णन की ओर बहुत कम रहा है। इसका कारण यह है कि हिन्दी कविता का प्रारम्भ उस समय हुआ जब हमारे देश में स्वार्थीनता का अच्छा सा वायुमण्डल मौजूद नहीं था। कवि लोग विशेष कर राजाओं और बादशाहों के दरबार में आश्रित थे, और उनको प्रकृति निरीक्षण के अन्तर भी प्रायः कम ही मिलते थे। अधिकांश में अपने आश्रय-दाताओं तथा उनके दरबार के मनोरंजन अथवा कीर्ति-वर्णन के लिए ही कवि लोग रचनाएँ करते थे। ऐसी दशा में प्रकृति चित्रण की ओर उनका ध्यान न जाना एक स्वाभाविक बात है। फिर भी कुछ भक्त कविना ने प्रकृतिवर्णन अच्छा किया है। नन्ददास जी की कविता में भी प्रकृति चित्रण दो रूपों में हुआ है—एक तो प्रकृति का वास्तविक चित्रण दूसरा उद्दीपन तथा अलंकार रूप में प्रकृति का वर्णन। वास्तविक प्रकृति चित्रण को ही हम वास्तविक प्रकृति-वर्णन कह सकते हैं। इस प्रकार के प्रकृति-वर्णन में 'विम्ब' ग्रहण करना ही कवि का मुख्य उद्देश्य होता है। विम्ब ग्रहण से तात्पर्य यह है कि कवि जिस दृश्य का चित्रण कर उसकी मजिद प्रतिमा पाठकों के सम्मुख आ जानी चाहिए। कुछ स्थलों पर नन्ददास ने प्रकृति का चित्रण इंगी रूप में किया है। उदाहरण रूप में कतिपय पद नीचे दिए जाते हैं —

तिर्हि मुर-तरु-मधि और एक अद्भुत क्षयि छानै ।

साखा दल फल फूलन हरि-प्रतिविम्बि खिरानै ॥ ३४ ॥

ता तरु कोमल फनक भूमि मनि-मै मोहत मन ।

खगिन्यनु सय प्रतिविम्ब मनहुँ घर मैं दर्जाँ बा ॥ ३५ ॥

थलज जलज झलमलत, ललित बहु भँवर उडावै ।  
 उड़ि उड़ि परन पराग, बिलल छवि कहति ७ आवै ॥ ३६ ॥  
 जमुना जू अति प्रेम भरी तट बहति जु गहरी ।  
 मनि-मडिन महि माफि, दूरि जा उपजति लहरी ॥ ३७ ॥

रा० प० अ० १

राह्य प्रकृति चित्रण-सम्पत्ती काव्य के निम्नलिखित पद भी सुन्दर हैं—

सुभ-सरिता के तीर धीर बलवीर गण तहँ ।  
 फौमल मने समार, छविन की महा भीर जहँ ॥ ११६ ॥  
 कुसुम धूरि धूपरी कुच, छवि पुजा छाइ ।  
 गुजत मजु मलिद येनु जनु बजति मुहाइ ॥ ११७ ॥  
 इत महकति मालती, चार चपक चित चोरत ।  
 उत घनसार तुसार मिली मन्तार झकोरत ॥ ११८ ॥  
 इत लगन नव-रग पलची भेलि रही रस ।  
 उत कुरक केवरो, केतकी गध-बध-वस ॥ ११९ ॥  
 इत तुलसी छवि हुलसी छाडति परिमल-पूर ।  
 उत कमोद घामोन् गोन् भरि भरि सुख लूट ॥ १२० ॥

रा० प० अ० १

उदाम जी भक्तकाल में हुए, अतएव उद्दीपन तथा अलङ्कार रूप में आपा प्रकृति का जो चित्रण किया उसमें उतनी अस्वामानिता नहीं आने पाई जितनी मिहागी, देव तथा रीतिनाल के अन्य कविना में आई । भगवान् कृष्ण के रास की इच्छा करते ही उद्दीपन रूप में जो चन्द्रोदय हुआ उसका मन्तार चित्र निम्नलिखित पदों में करि ने गया है ।

ताही छिन उदराज उज्जित, रस रास सहायक ।  
 कुसुम मडिन प्रिया पदन जनु नागर नायक ॥ २१ ॥  
 फौमल किरन अरुन नभ धन मैं व्यापि रही री ।  
 मनसिज खेर्या फागु धुंमरि घुरि रह्यो गुलाल उज ॥ २२ ॥



फटिक-छत्रा सी किरन कुज-रन्ध्रन है आई ।  
मानै वितन वितान, मुदेस तनाव तनाई ॥ ५३

रा० प० अ० १

अत्र अलंकार रूप में भी प्रकृति वर्णन का एक उदाहरण नीचे उद्धृत किया जाता है —

मुख-अरविन्द आगै, जल अरविन्द लगै अस ।  
भोर भएँ भवनन के दीपक मद परत अस ॥ ५१ ॥

रा० प० अ० ५

नन्ददास जी की समस्त कविता देखने से जान पड़ता है कि हिन्दी के अन्य भक्त कवियों की भांति नन्ददास जी ने भी अपने काव्य में प्रकृतिवर्णन को कोई खास विशेषता नहीं दी है। लेकिन वर्णन के प्रवाह में आपने प्रकृतिचित्रण का कोई अंश भी हाथ में जाने नहीं दिया है।

कठोपनिषद् में कहा गया है कि जब मनुष्य के हृदय में रहने वाली सत्र कामनायें छूट जाती हैं, तब वह मुक्त हो जाता है। उस समय वह इसी मसाल में रहते हुए ब्रह्मानन्द का उपभोग करता है।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य तृदिश्रिता ।

अथ मर्त्याऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्मसमरनुते ॥

अत्र प्रश्न यह उठता है कि कामनाओं का बन्धन कैसे छूटे इसके लिए भी दो उपाय बतलाये गए हैं—ज्ञान और भक्ति। पूर्णज्ञान प्राप्त होने से अविद्या तथा तज्जनित तृष्णादि का नाश हो जाता है। उग्र तपस्या के पश्चात् ज्ञान की प्राप्ति पर भगवान् बुद्ध ने निमलिनित उदान (उल्लास-गान्ध) कहा था —

अनेक जाति मसार मन्धाविस्स अनिदिम ।

गहकारक गयेमन्तो दुक्खता जाति पुनपुन ॥

गह्वरक विद्मोमि, पुन गेह न काहमि ।  
 मया ते वामुका भग्ना, गह्वरु विमरित ॥  
 विमथार गत चित्त, तएहान स्वय मग्भगा ।

धम्मपद ११-२

अथात् मे लगातार अनेक जन्मों तक ( इस मायावादी घर में  
 जाना वाले ) गह्वर को लूटता हुआ मसार में रोड़ता रहा । फिर  
 फिर पैदा होना दुःखदायी है । लेकिन हे गह्वर ! अब तुझे मैं देव  
 निया । अब तू फिर घर में जाना मरगा । तेरी सभी कड़ियों टूट गईं ।  
 गह्वरु भी गिर पड़ा । चित्त सम्भार-रहित हो गया । तृष्णा जाती  
 रही ।

भगवान् बुद्ध की तरह बैठिन तपस्या करत जाला की सग्या इस  
 समाग में अत्यल्प है, अतएव सबसाधारण के लिए भक्तिमाग की  
 श्रेयस्कर प्रतीलाया गया है । श्रीमद्भागवतकार के अनुसार मनयुग,  
 जेना तथा हापर में मात्र मान के लिए जान तथा वैराग्य अनेकित  
 हैं, किन्तु कलियुग में तो केवल भक्ति द्वारा ही मायुज्य मुक्ति मिल  
 मन्ती है —

सत्यादि त्रियुगे बोध वरागर्था मुक्तिमाधका ।

कर्त्वा तु केवला भक्तिवहससायुज्यकारिणी ॥ ४ ॥

श्री० भा० साहाय्य अ० २

इस प्रकार श्रीमद्भागवत में वामुदेव की भक्ति का श्रेष्ठ मानी गई  
 है । महर्षि गर्ग ने भा गालव को सम्बोधित करते हुए एक स्थान पर  
 कहा है —

हे गालव ! परमात्मा-स्वरूप कृष्ण ही अशराशिया की निधि हैं ।  
 यह प्रहाएट उनका एक अर्य हैं । अपनी मौच क लिए गिरु बाह करने  
 वाले जालन की भाक्ति इश्वर अपनी माया से सृष्टि का मघटा गोर  
 विपटन किया करता है । यह माया वामुदेव की र्मिण है । इसकी  
 निवृत्ति कृष्ण के उपासनापुञ्ज से होती है ।

श्रेयोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।

अव्यक्ता हि गतिर्दुःख देहवद्विरवाप्यते ॥ ५ ॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्त्यस्य मत्परा ।

अनन्येनैव योगेन मा ध्यायन्त उपासते ॥ ६ ॥

तेषामहं समुद्धरता मृत्युमसारमागरात् ।

भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥

भ० गी० अ० १२

अर्थात् अव्यक्त निर्गुण में चित्त लगाने वाले को उड़ी तफलीफ होती है, स्यान्नि निर्गुण ब्रह्म उड़ी फठिनाई में प्राप्त होता है । इसलिए मुझपर अनान्तिफ प्रेम रखते हुए जो लोग अपने सारे सामारिक कर्मों को, मेरे ही लिए करते हुए, मुझको ही समर्पित करते हैं,—इस प्रकार जो मुझ में अनन्य होकर, मेरा ही ध्यान करते हुए, मेरी ही भक्ति में लपलीन रहते हैं,—एकमात्र मुझ में ही चित्त को लगाये रखते हैं, उनको मैं अनायास मृत्यु-समारमागर से पार करके परमपद प्राप्त कराता हूँ । यही गोपियो की मुलभ भक्ति थी, जिसको नन्ददास जी ने अपनी अनुपम प्रतिभा और कवित्वशक्ति के द्वारा सर्वसाधारण जनता के सन्मुख रखा है ।

सुन्दर-उदर उदार, रुमावलि राजति भारी ।  
 'द्विअ-सरवर-रस-पूरि, चली जनु उँमगि पनारी ॥१०॥  
 २ता-रस की कुंडिका-नाभि, सोभित अस गहरी ।  
 त्रिवली ता में ललित-भाँति जनु उपजति लहरी ॥११॥<sup>७</sup>  
 अति<sup>१</sup>-सुदेस कटि-देस सिह सोभित सघनन अस ।  
 जुव<sup>४</sup>-जन-मन आकरपत, परपत प्रेम-सुधा-रस ॥१२॥<sup>१</sup>  
 गूढ-जानु, आजानु-बाहु, मद-गज गति लोलैं ।  
 गंगाटिकन पवित्र करत<sup>५</sup> अपनी पै डोलैं ॥१३॥  
 सुन्दर-पद-अरविन्द मधुर-मकरद मुक्त जहँ ।  
 मुनि-मन मधुकर-निकर सदाँ-सेवित लोभी तहँ ॥१४॥<sup>१</sup>

पाठान्तर—

- (त) १—हीरों सरोवर रस भरयो धरयो मधु उँमग पनारी ।  
 (रा०) २—जिहँ रसकी कुंडिका-नाभि सोभित अम गहरी ।  
 ७ उक्त छंद भारतेन्दु जी की प्रति—“भा० चन्द्रिका” में नहीं है ।  
 (ग) ३—कटि प्रदेश सुन्दर सुदेश जघन सोभित अस ।  
 (रा०),—अति सुदेश कटि देस सिह सुन्दर सोभित अस ।  
 (च) ४—जोषन मन आकरपत, ।  
 ११—जुषतिन मन आकरसत परसत प्रेम-सुधारम ॥  
 †, उक्त पद ट) प्रति में, और चन्द्रिका में नहीं है ।  
 (फ) ५—करन ।  
 ‡ उक्त पद (ख) प्रति में और “भा० चन्द्रिका” में नहीं है ।

कृपा-रंग-रस-ऐन, नैन राजत रतनारे ।  
कृष्ण<sup>१</sup>-रसासव-पान, अलस<sup>२</sup> कछु घूम-घुंमारे ॥५॥

स्रवन<sup>३</sup> कृष्ण-रस भरन गंड-मंडल भल दरसै ।  
प्रेमानंद मिलि तासु, मन्द-मुसिकन-मधु-परसै ॥६॥

उन्नत-नासा, अधर-विम्ब, सुक की छवि छीनी ।  
तिन<sup>४</sup> मधि अद्रभुत-भाँति लसति कछु इक मसि भीनी ॥७॥

कंबु-कंठ की रेख देख, हरि-धरम प्रकासै ।  
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, जिहिँ निरखति नासै ॥८॥

उर वर पै<sup>५</sup> अति-छवि की भीर, कछु वरनि न जाई ।<sup>†</sup>  
जिहिँ भीतर जगमगत निरन्तर कुँवर-रुन्दाई ॥९॥

पाठान्तर—

(ग) १—कृष्ण रसामृत ।

(रा०) २—करत ।

(रा०) ३—स्रवन कृष्ण रस भवन गंड महल भल दरसै ।

प्रेमानन्द-मलिन्द मन्द मुसिकनि मधु परसै ॥

(च) ४—तिनविच अद्रभुत भाँति लसै जु कछुक मसि भीनी ।

(रा०) ,, तिन महँ अद्रभुत-भाँति जु कछुक लसति मसि भीनी ॥

(ट) ५—पर ।

† उक्त पद में “अति छवि की” “की” को हुत्व रूप से पढ़ना चाहिये, जिससे छंद में एक मात्रा न बदे और “अतिभग दोष” भी न हो । नंददास जी ने प्रायः (अन्यत्र भी) ऐसा ही व्यवहार किया है ।

सुन्दर-उदर उदार, रुमावलि राजति भारी ।  
 'हिअ-सरवर-रस-पूरि, चली जनु उँमगि पनारी ॥१०॥

२ता-रस की कुँडिका-नाभि, सोभित अस गहरी ।  
 त्रिवली ता मै ललित-भाँति जनु उपजति लहरी ॥११॥\*

अति<sup>१</sup>-सुदेस कटि-देस सिंह सोभित सघनन अस ।  
 जुव<sup>४</sup>-जन-मन आकरपत, वरपत प्रेम-सुधा-रस ॥१२॥†

गूढ-जानु, आजानु-बाहु, मढ-गज गति लोलें ।  
 गगाटिकन पवित्र रुरत<sup>६</sup> अग्नी पै डोलें ॥१३॥

सुन्दर-पट-अरविन्द मधुर-मकरंद मुक्त जहँ ।  
 मुनि-मन मधुकर-निकर सदाँ-सेवित लोभी तहँ ॥१४॥‡

पाठान्तर—

- (त) १—हीर्यो सरोवर रस भरयो चलयो मधु उँमग पनारी ।  
 (रा०) २—जिहिँ रसकी कुँडिका-नाभि सोभित अस-गहरी ।  
 \* उक्त छद् भारतेंदु जी की प्रति—“भा० चन्द्रिका” में नहीं है ।  
 (ग) ३—कटि प्रदेश सुन्दर सुदेस जघन सोभित अस ।  
 (रा०),—अति सुदेस कटि देस सिंह सुन्दर सोभित अस ।  
 (च) ४—जोधन मन आकरपत, ।  
 ,, —जुवतिन मन आकरसत वरसत प्रेम-सुधारम ॥  
 †, उक्त पद ट) प्रति में, और चन्द्रिका में नहीं है ।  
 (क) ५—करन ।  
 ‡ उक्त पद (ख) प्रति में और “भा० चन्द्रिका” में नहीं है ।

जब दिन-मनि श्री कृष्ण, दृगन तैं दूरि भए दुरि ।  
पसरि परधौ अंधियारि, सकल-ससार घुँमडि-घुरि ॥१५॥

तिमिर-ग्रसित सब-लोक-आंक दुखि देखि दयाकर ।  
प्रगट कियौ अद्भुत प्रभाव, भागवत<sup>२</sup> जु विभाकर ॥१६॥<sup>७</sup>

जे संसार अंधियार<sup>३</sup>-गार में मगन भए परि ।  
तिन-हित अद्भुत-दीप प्रकट कीनौ जु कृपाकरि ॥१७॥<sup>†</sup>

श्रीभागवत सुभ<sup>४</sup> नाम, परम-अभिराम अमित-गति<sup>५</sup> ।  
निगम-सार, सुक<sup>६</sup>-सार, विना-गुरु-कृपा अगम अति ॥१८॥

ताहू<sup>७</sup> में पुनि अति-रहस्य यह पच-याई ।  
तन में जैसे पच-प्रान, अस सुक मुनि गाई ॥१९॥

पाठान्तर—

(रा०) १—लखि दुखित दयाकर ।

(प) , —बिकल जब देखि दयाकर ।

(द) २—श्रीमान ।

७ उक्त पद (ग) प्रति में और "भा० चन्द्रिका" में नहीं है ।

(ट) ३—असार अंगर में ।

† उक्त पद "भा० चन्द्रिका" में नहीं है ।

(क) ४—सो नाम ।

„ ५—परम रति ।

(च) „—प्रेम-मति ।

(प) ६—निरधार ।

(झ) ७—ताही में मनि अति ।

परम-रसिक डक मित्र, मोहि तिन आग्या कीनी ।  
ताही<sup>१</sup> तै यह कथा, जथा मति भाषा कीनी ॥२०॥

### श्री वृन्दावन-वर्णन

अत्र<sup>२</sup> सुन्दर श्री वृन्दावन को गाइ सुनाऊँ ।  
‘सरल-सिद्धि-दाइक, नाटक, सब ही विधि पाऊँ ॥२१॥<sup>३</sup>  
श्री वृन्दावन चिदयन, रूखु उवि वरनि न जाई ।  
कृष्ण ललित-लीला के काज परि रक्षा जडताई ॥२२॥<sup>४</sup>  
जहें<sup>५</sup> नग, खग, मृग, लता, मृज विरुध-तन जेते ।  
परत न काल-प्रभाव, मर्दो सोभित हे तेते ॥२३॥

पाठान्तर—

- (ग) १—आपुन विरद पिछान जान निज करना कीनी ,  
(घ) ,—तातैं मै यह कथा जथा मति भाषा कीनी ।  
(च) २—अति-सुन्दर अब वृन्दावन को ।  
(ट) ,,—अब सुन्दर श्री वृन्दावन-गुन गाइ सुनाऊँ ।  
(न) ,,—अब सुन्दर श्री वृन्दावन—कछु गाइ सुनाऊँ ।  
(प) ३—परम प्रीति, रस रीति प्रेम परिपूरन पाऊँ ।  
(ट) ,,—सब विधि सुधि पाऊँ ।

लुप्त पद (क) प्रति में नहीं है ।

† यह पद (ग) (न) (घ) प्रतियों में नहीं है ।

(च) ४—पुनि तहें खग मृग ।

(रा०) ,,—जहें मृग, खग, नग कुत्र ।

“ ” नहि न काल गुन प्रभा मर्दो सोभित रहै तत ॥



सकल जन्तु अविरुद्धि जहाँ हरि मृग संग चरही ।  
 काम, क्रोध, मद, लोभ-रहित लीला अनुसरहीं ॥२४॥  
 सब<sup>१</sup> ऋतु सत वसत, रहति जहँ दिन-मनि शोभा ।  
 आँन<sup>२</sup> बनन जाकी विभूति करि सोभित-सोभा ॥२५॥  
 जो<sup>३</sup> लछमी निज रूप-अनूप<sup>४</sup> चरन सेवति नित ।  
 भ्रू<sup>५</sup> विलसति जु विभूति जगत जगमग रहि जित-तित ॥२६॥  
 श्री अनन्त, महिमा-अनन्त, को वरनि सकै कवि ।  
 संकरसन सौ कछुक कही श्रीमुख<sup>६</sup> जाकी छवि ॥२७॥  
 ७देवन<sup>७</sup> मैं श्री रमा-रमन नाराइन प्रभु जस ।  
 कानन<sup>८</sup> मैं श्री वृन्दावन, सब-दिन सोभित अस ॥२८॥\*

पाठान्तर—

- (प) १—सब दिन रहति थसत कृष्ण-अवलोकनि लोभा ।  
 (रा०) ,,—सब दिन रहत वसंत लसै तहँ दिन दिन लोभा ।  
 (क) २—त्रिभुवन कानन जा विभूति ।  
 (ख) ,,—आनन्द लता विभूति काल सोभित जहँ सोभा ।  
 (रा०) सब कानन जाकी ।  
 (ट) ३—ज्यों ।  
 ४—रहति ।  
 (च) ५—भू ।  
 (च) ६—सुन्दर जाकी ।  
 (रा०) ७—७देवन मैं श्री रमा रमन नाराइन जैसे ।  
 कानन मैं श्री वृन्दावन सोभित है ऐसे ॥  
 (फ) ८—बनन माहि वृन्दावन मुदेश ।

या न्न की नर'-गानक, या बन-हीं बन आवै ।  
सेस, महेस, सुरेस, गनेसहु, पार न पावै ॥२९॥

जहँ जेतिक द्रुम-जाति, कलपद्रुम सम सब लाइक ।  
चिन्तामनि सी<sup>२</sup> भूमि, सबै चिन्तति फल-दाइक ॥३०॥

तिन-मधि इक जु कलपतरु<sup>३</sup> लगि रही जगमग-जोती ।  
पत्र, मूल, फल, फूल सकल, हीरा, मनि<sup>४</sup> मोती ॥३१॥

तिन-मधि तिन के गन्ध<sup>५</sup> लुन्ध, अस<sup>६</sup> गान करति अलि ।  
वरु किन्नर, गन्धरव, अपट्टरा, तिन पे गई बलि ॥३२॥

अमृत-फुही, सुग्व-गुहो, सुही, ज्या परति रहति नित ।  
रास-रसिक सुन्दर-पिय के<sup>७</sup> स्रम दुरि करन हित ॥३३॥

पाठान्तर—

(प) १—धनि ।

(प) २—सै ।

(क) १—सम सकल भूमि चिन्तति फल दाइक ।

(ट) ३—कलपद्रुम वर जगमग-जोती ।

, ४—पात मूल फल ।

(प) ५—तिन मोतिन के गन्ध ।

(च) ६—शक्ति ।

(च) ७—कौ ।

परमात्म,<sup>१</sup> परब्रह्म, सवन के अंतरजामी ।  
 नाराइन-भगवान, धरम करि सब के स्वामी ॥४२॥  
 वाल,<sup>२</sup> कुमार, पौगड-धरम आक्रान्त लसत तन ।  
 धरमी नित्त किसोर-कान्ह, मोहत सब काँ मन ॥४३॥  
 मृदु-उज्जल स्यामल सु अग, अटभुत-सिँगार करि ।  
 नवल-किसोर सु मोर-चद्रिका, सुभग-सीस धरि ॥४४॥<sup>३</sup>  
 गल<sup>४</sup> मुक्तन की माल, लाल वनमाल धरें पिय ।  
 मंड<sup>५</sup>-महत-वस पीत-वसन, फरकत करखत हिय ॥४५॥<sup>६</sup>  
 अस अटभुत गोपाल-लाल, सब-काल वसत जहँ ।  
 ताही तँ वैकुण्ठ<sup>७</sup>-विभव, कुंठित लागत तहँ ॥४६॥

---

पाठान्तर—

(क) १—परम आत्मा राम, धरम कर अंतर जामी ।

(ट) ,,—परमात्म धुरि धरम, सवन के अंतरजामी ।

(च) ,,—सब आनमाराम ।

(ट) २—सिसु, कुमार, पौगड धरम रुचि ललित लसत तन ।

(प) ,,—वाल, कुँवर, पौगड धरम आकार ललित-तन ।

उक्त पद (क) प्रति में नहीं हैं ।

(प) ३—कँठ मुतियन की माल जवाज वनमाज ।

(प) ४—मद मधुर हरि पीत वसन, फरकत ।

† उक्त पद (क) प्रति में नहीं हैं ।

(प) ५—वैकुण्ठ विभी ।

## सरद-रजनी-वर्णन

जदपि<sup>१</sup> सहज-माधुरी, विपिन सव दिन सुखदाई ।  
तदपि रँगीली-सरद-समै मिल अति-छवि छाई ॥४७॥

ज्यौ<sup>२</sup> श्रमोल-नग जगमगाइ, सुन्दर-जराव सँग ।  
रूपवन्त, गुनवन्त, बहुरि<sup>३</sup> भूपन-भूपित-अँग ॥४८॥

रजनी-मुख-सुख देखि,<sup>४</sup> ललित मुकुलित जु मालती ।  
ज्यौ नव-जोवन पाइ, लसति गुनवती बाल-ती<sup>५</sup> ॥४९॥

छवि सौ फूले<sup>६</sup>-फूल अर अस लगी लुनाई ।  
मनौ<sup>७</sup> सरद की छपा छयीली विलसति आई ॥५०॥

पाठान्तर—

- (रा०) १—सहज-माधुरी वृ-दावन, सयदिन सुखदाई ।  
(प) २—ज्यौ अद्भुतनग जगमगात, सुन्दर जडाव-सँग ।  
(प) ३—भूरि ।  
(क) ४—देति ललित प्रकुलित जु माजतिथ ।  
(क) ५—तिथ ।  
(ट) ६—फूले और फूल, अस लगी लुनाई ।  
(रा०) ,, छवि सौ फूले फूल, अतुल अस लगी लुनाई ।  
(भ) ,,—नव फूलन सौ फूलि फूल, अस लगति लुनाई ।  
(प) ७—मनहुँ विषा, विहँसति आई ॥  
(भ) ,,—सरद छयीली छपा हँमति छवि सौ मनुआई ॥

सुनति चलीं ब्रज-बधु, गीत-धुनि कौ मारग गहिँ ।  
 भवन-भीति द्रुम-कुंज-पुत्र, फित हूँ अटकी नहिँ ॥६०॥

नाँद<sup>१</sup>-ब्रह्म कौ पथ रंगीलौ, सूच्छम-भारी ।  
 तिहि<sup>२</sup> मग ब्रज-तिय चलीं, आँन कोऊ नहिँ अधिकारी ॥६१॥

सुद्ध-प्रेम-मय रूप, पंच<sup>३</sup>-भूतन तैं न्यारी ।  
 तिन्है कहा कोऊ कहै, जोति<sup>४</sup> सी जग उजियारी ॥६२॥

जे<sup>५</sup> रुकि गई घर अति-अगीर, गुनमय सरौर बस ।  
 पुत्र<sup>६</sup>, पाप, प्रारब्ध सच्यौ, तन पच्यौ नाहि रस ॥६३॥

परम-दुसह-श्रीकृष्ण-पिरह-दुख व्यापौ तन<sup>७</sup> में ।  
 कोटि-वरस लौ नरक-भोग-अघ, भुगते छन<sup>८</sup> में ॥६४॥

पाठान्तर—

(ल) १—नाँद अमृत ।

(रा०) ,,—राग अमृत ।

(च) २—तिहि ब्रज तिय भज चलीं ।

(त) ३—सुद्ध-जोति-मै रूप, पंच भौतिक तैं न्यारी ।

(च) ४—जोति सी जगत उजारी ।

(रा०) ५—जे रहि गई घर अति अघोर ।

(ल) ६—पाप पुत्र प्रारब्ध रच्यौ तन, नाहि पच्यौ रस ।

(क) ७—जिन में ।

(ग) ,,—तिन में ।

(प) ८—दिन में ।

पुनि<sup>१</sup> रचक धरि ध्यान, पीय<sup>२</sup> परिरभ दिया जय ।  
कोटि-सरग सुख-भोग, छिनक<sup>३</sup> मंगल भुगते सब ॥६५॥  
लोह<sup>४</sup>-पात्र पाखान परसि कचन है सोहै ।  
नद-सुवन का परसि प्रेम, यह अचरज कोहै ॥६६॥  
ते<sup>५</sup> पुनि तिहि मग चलीं, रंगाली तजि गृह-सगम ।  
जनु<sup>६</sup>, पिजरन तैं डुटे, घुटे नय-प्रेम विहगम ॥६७॥  
कोउ तरुनी गुनम<sup>७</sup> सरीर, तिन सग चली भुकि ।  
मात, पिता, पति, ननु, रह भुकि, भुकि न रही रुकि ॥६८॥†

पाठान्तर—

(रा०) १—जिय पिय कै धरि ध्यान तनकि आलिगन किय जय ।

(क) २—पिया ।

(प) ३—छीन कीन मंगल सब ।

(रा०) ४—इतर धातु पाहनहि परसि कचन है सोहै ।

(प) ५—धातु-पात्र ।

(,) ६—नंद सुवन सौं परम प्रेम यह अचरज को है ।

(ढ) ७—तेउ पुनि तिहि ।

(,) ८—जनु पिजरन तैं उडे छुड जय-प्रेम विहगम ।

(क) ९—गुणमय सरीर ही सहित चली डुकि ।

† उक्त पद्य (ट) प्रति न नहीं है ।

सावन-सरिता रुकै<sup>१</sup> कहूँ करौ कोटि-जतन-अति<sup>२</sup> ।  
कृष्ण-हरे<sup>३</sup> जिन के मन ते क्यों रुकै अगम-गति ॥६९॥

<sup>४</sup>चलति अधिक छवि फवति, सवन मनि कुंडल भलकै ।  
सकित लोचन चपल चारु, नव-विलुलित-अलकै ॥७०॥

जदपि<sup>५</sup> कहूँ-के-कहूँ तियन<sup>६</sup> आभरन बनाए ।  
हरि-पिय पै अनुसरत, जहाँ के तहँ चलि आए ॥७१॥<sup>७</sup>

कहूँ लखियतु कहूँ नाहिँ, सखीं बन वीच बनीं यौ ।  
विजुरिन कीसी छटा, सघन-बन माँझ चली जाँ ॥७२॥<sup>८</sup>

---

पाठान्तर—

(ट) १—नाहि रुकै करौ कोटि ।

(थ) ,,—नाहि रुकै करै कोटि ।

(रा०) २—सावन सरिता न रुकहि करै जो जतन फोड अति ।

(क) ३—गहे ।

(रा०) ४—चलति अधिक-छवि फवी सवन में कुंडल भलकै ।  
सकित लोचन-चपल ललित छवि मिलुचित अलकै ।

(क) ५—जदपि तियन आभरन कहूँ के कहूँ बनाए ।

(ट) ६—सघन ।

७ उक्त दोनों पद्य (क) प्रति में नहीं हैं ।

कुजन-कुजन निसरत वर-आनन सोभित अस् ।  
तम कौने तै निकर लसत राका-मयरु जस ॥७३॥

आइ उँमग सौ मिलीं रँगीली-गोप-उधु यौ<sup>१</sup> ।  
<sup>२</sup>नद-सुवन-नागर-मागरसौ, प्रेम-नदी ज्यौ ॥७४॥

### परीक्षित-प्रश्न

परम-भागवत-रतन रसिक जु परीक्षित-राजा ।  
प्रस्न कर्यौ रस-पुष्टि करन निज-सुख के काजा ॥७५॥

<sup>३</sup>श्रीभागवत कौ पात्र जानि जग कौ हितकारी ।  
उदर-दरी में करी कान्ह जाकी रखवारी ॥७६॥

जाकौ सुन्दर-स्याम-रुधा छिन-छिन नई<sup>४</sup> लागै ।  
ज्यो लपट पर-जुगति-गत सुनि-सुनि<sup>५</sup> अनुरागै ॥७७॥

---

पाठान्तर—

(ट) १—अस ।

(प) २—नद सुवन सुन्दर मागर सौं प्रेम नदी जस ।

(रा०) ॥—नंद-सुवन मागर सुन्दर सौं प्रेम नदी जस ।

(क) ३—परम धरम कौ पात्र जानि ।

(॥) ४—प्रिय ।

(॥) ५—प्रति ।



<sup>१</sup>अहो मुनि ! क्यों गुनमय सरीर परिहरि पाए हरि ।

<sup>२</sup>जानि भजे कमनीय-कान्ह, नहिं ब्रम्ह-भाव करि ॥७८॥

### उत्तर

तवै<sup>३</sup> कही सुकदेव देव यह अचरज नॉही ।

सरव-भाव-भगवान-कान्ह जिनके<sup>४</sup> उर माँहीं ॥७९॥

परम-दृष्ट-सिसुपाल वालपन तैं निदक-श्रुति ।

जोगिन कौ जो दुरलभ<sup>५</sup> सुरलभ सो पाई गति ॥८०॥

हरि<sup>६</sup>-रस ओपी गोपी सवहि तियन तैं न्यारी ।

<sup>७</sup>कमल-नैन गोविन्द-चन्द की प्रानन-प्यारी ॥

---

#### पाठान्तर—

(,१) १—हे मुनि, क्यों गुनमय सरीर सौ पाए हैं हरि ।

(प) २—जो न भजे कमनीय कान्त अति-ब्रम्ह भाव करि ।

(क) ३—तव कहि श्री सुकदेव देव अचरज यह नाहीं ।

(क) ४—कृष्ण जिनके मन माहीं ।

(च) ५—सुलभहि सो पाई गति ।

(च) ६—वे हरि रस ओपी गोपी सग तिरयन तैं न्यारी ।

(प) ७—कमल-नयन गोविन्द चन्द जू की प्रान पियारी

## कृष्ण-दर्शन

तिनके<sup>१</sup> नूपुर-नाँद सुने, जय परम-सुहाण ।  
तय हरि के मन, नैन, मिमटि सय सत्रनन आए ॥८२॥

रनुन-भुनुक पुनि<sup>२</sup>भली-भाँति मौ प्रगट भई जय ।  
पिय के अँग-अँग सिमटि मिले<sup>३</sup> हे रसिक नैन तय ॥८३॥

सय के मुग्य अवलोकति, पिय के नैन वने यो ।  
सुचि<sup>४</sup>-सुन्दर-ससि माँभि, अरवरै द्वै चकोर ज्यो ॥८४॥

अति-यादर करि लई, भई, चहुँ-दिसि ठाडी अनु ।  
उटा<sup>५</sup>-छयीली छेकि रही मृदु-घन-मूरति जनु ॥८५॥

### पाठान्तर—

(क) १—जिनके नूपुर नाँद सुने अति परम सुहाए ।

(अ) २—रनुक मनक पुनि भाँति छयीली जय प्रगट भई सय ।

(,,) ३—छयीले नैन मिले तय ।

(प) ४—यइत सरद सभि ।

(,,) ५—अति यादर करि लई भई पिय पै ठाडी अनु ।

(,,) ६—छटन छयीली मिलि छेकी मनुल मूरति जनु ।

(ट) ,,—छयीली-छटान मिलि छेक्यौ मनुल घन मूरति जनु ।

नागर<sup>१</sup>वर नंद-नंद चढ, हँसि-मद-मढ तन ।  
बोले बाँके-बैन, प्रेम के परम ऐन-सव ॥८६॥

उज्जल-रस काँ यह मुभाय, बाँकी-छवि पावै ।  
बक-चहनि, बरु बक-कहनि, अति-रसहि बढावै ॥८७॥

ए सय नवल-किसोरी, भोरी<sup>२</sup>, भरीं नेह-रस ।  
तातैं समझि न परी, करीं पिय परम-प्रेम बस ॥८८॥

जैसै नाइक गुन सरूप, अति-रसिक-महा है ।  
सव-गुन मिथ्या हाँइ, नैकु जो बंक न चाहै ॥८९॥

त्यौ<sup>३</sup> कहि कैउक वचन नरम, कैउक रस-बस कर ।  
कहे<sup>४</sup> कैउक तिय-धरम, भरम-भेदक सुन्दर-वर ॥९०॥

पाठान्तर—

- (प) १—नागर, नगधर, नद चद ।  
(क) ,,—तय नागर-गुरु नद चद, हँसि मद मंद जय ।  
(प) २—ए सव नवल किसोरी, गोरी भरीं प्रेम रस ।  
(,,) ३—ज्यों सुन्दर नाइक सुख दाइक रसिक-महा है ।  
(च) ४—कैउक-वचन कहि नरम, कहे कैऊ रस बर कर ।  
(य) ,,—कैक वचन कहे नरम, कैक रसवर कर्मनि पर ।  
(प) ५—कैउक कहि तिय धरम ।  
(च) ,,—एक कहे तिय धरम, परम-भेदक सुन्दर वर ।

## गोपी-दशा-वर्णन

लाल<sup>१</sup>-रसालहि वरु-वचन सुनि, थकित भई यौ ।  
बाल<sup>२</sup>-मृगिनि की पॉति, सघन-वन भूलि परी त्यों ॥९१॥

मँद परसपर हँसी, लसीं, तिरछी<sup>३</sup> अँखियनि अस ।  
रूप-उदधि इतरात, रँगीली-मीन-पॉति जस ॥९२॥

जत्रै कहाँ पिय जाउ, अधिक चित्त-चिता वाढी ।  
पुतरनि की सी पॉति रहि गई इरु-टक ठाढी ॥९३॥

<sup>४</sup>दुरस सौं दधि छवि-सीय, ग्रीय, लँ चलीं नाल सी ।  
अलक-अलिन के भार, नमित जनु कमल-माल सी ॥९४॥

<sup>५</sup>हिय भरि पिरह हुतास, उसासन-सँग आयत झर ।  
चले कटुक मुरझाइ, मद-भरै अपर-पिन-वर ॥९५॥

### पाठान्तर—

- (क) १—पिय लालहि के वक ।  
(ख) „—लाल रसिक के वक वचन सुनि, थकित भई यौ ।  
(च) २—बाल-मृगन की माल, सघन ।  
(द) „—बाल मृगन की सगति, घन घन मूलि ।  
(क) ३—अँखियों घस ।  
(ख) ४—दुख के बोझ छवि सीय, ग्रीय ने चलीं नाल सी ।  
अलक अलिन के भार, निहुरि मनु कमल-नालसी ।  
(ख) ५—हिय भरि पिरह हुतासन, साँसन सँग आयत झर ।

## गोपी-कथन

१तव बोली ब्रज-वाल, लाल ! मोहन अनुरागी ।  
सुन्दर गदगद-गिरा, गिरि-ग्रहिँ, मधुरी लागी ॥९६॥

अहो मोहन ! अहो प्राननाथ !! सुन्दर<sup>१</sup>-सुखदाइक !!! ।  
क्रूर-वचन जिनि कहौ, नाहिँ<sup>२</sup>ए तुम्हरे लाइक ॥९७॥

३जो पूँछै कोउ धरम, तवहिँ तासौ कहिए पिय ? ।  
विनु पूँछै ही वरम, फितहिँ कहिए, टहिए हिय ॥९८॥

धरम<sup>४</sup>, नैम, जप, तप, व्रत, संजम, फलहिँ बतावै ।  
यह रूहुँ नाहिँन सुनी, जु फल फिरि धरम सिखावै ॥९९॥

---

पाठान्तर—

(थ) १—तव बोली ब्रज नरख वाल, लालहिँ अनुरागी ।

(रा०) २—गद गद सुन्दर गिरा गिरि गिरिग्रहिँ मधुरी लागी ।

(च) ३—सोहन ।

(रा०) ,,—अहो हो मोहन—प्रान नाथ, सोहन सुखदाइक ।

(ट) ४—अहो नहिँ तुम्हरे लाइक ।

(रा०) ,,—निठुर वचन जिनि कहौ, नाहिँन ए तुम्हरे लाइक ।

(ट) ५—जय कोऊ पूँछै धरम तभी तामो कहिये पिय ।

(फ) ६—नैम, धरम, जप, तप नहिँ कबहुँ फल जु बतावै ।

(ड) ,,—नैम धरम, जप तप ए सब कोउ कहहिँ बतावै ॥

१ और तिहारौ रूप, धरम के धरम हिं मोहै ।  
 धर मै को तिय भरमें, ररमे या आगें कोहै ॥१००॥  
 तैसिय पिय की मुरली, जुरली, अधर-सुधा-रस ।  
 सुनि निज-ररम न तज, तरनि त्रिभुवन में को अस ॥१०१॥  
 २ नग, खग और मृगन हूँ नाहिं न धरम रहया है ।  
 छानि है रहै पिया ! अब न रुछु जात कद्यौ है ॥१०२\*  
 सुन्दर पिय को उदन निरखि कै ३ को नहिं भूलै ? ।  
 रूप-मरोवर मॉकि सरस-अम्बुज जनु 'फूलै ॥१०३॥†  
 ४ कुटिल अलक, मुग्व-कमल, मना मधुकर मतयारे ।  
 तिन में मिलि गए चपल-नैन, है मॉन हमारे ॥११४॥‡

पाठान्तर—

(व) १—धर तुम्हरो इहि रूप, धरम के भरमहि मोहै ।

धरमनु के तुम धरम, भरम या आगें कोहै ॥

(फ) २—याही पिय की मुरली, जुरली, अधर-सुधा-रस ।

(प) ३—नगन, खगन, औ मृगन तलक नहिं धरम गयौ है ।

उक्त पद्य (फ) प्रति में नहीं है ।

(च) ४—को सो जुन भूयौ ।

(,.) ५—भूल्यौ ।

† उक्त पद्य (फ) प्रति में नहीं है ।

(ट) ६—कुटिल अलक मनु अयोले मधुकर मतयार ।

तिन मधि मिलि गए पिया ! तिन हूँ मधुप हमारे ॥

‡ उक्त पद्य (क) प्रति में नहीं है ।

चित्तवनि मौहन-मत्र, भौह जनु मनमथ-फाँसी ।

१निपटि-ठगोरो आहि, मद-मुसकनि-मृदु-हाँसी ॥१०५॥\*

अधर-सुधा के लोभ भई, हम दासि तिहारी ।

२ज्यौ लुब्धी पद-रुमल, चचला-रुमला-नारी ॥१०६॥†

३जो न देहु अधरामृत, तौ मुनि सुन्दरि-हरि ।

करि हैं यह तन भसम, विरह-पावक मै परि-परि ॥१०७॥‡

४पुनि तुम्हरे पद परसि, बहुरि धरि हे सुन्दर-अंग ।

पीवहिँगी निधरक अधरामृत, पुनि सँग-ही-सँग ॥१०८॥§

पाठान्तर—

(प) १—निपट ठगोरी आहि मन्द मृदु मादक हाँसी ।

‡ उक्त पद (ख) प्रति में नहीं हैं ।

(प) २—लुब्धी ज्यौ पद कमला, नवला, चपला नारी ।

† उक्त पद (ट) प्रति में नहीं हैं ।

(ट) ३—जो न देहु यह अधर अमृत, मुनि हो मौहन हरि,

तौ करिहैं तन छार बार पावक मै परि परि ॥

‡ उक्त पद (च) प्रति में नहीं हैं ।

(ट) ४—पुनि पद पिय के परसि ।

(त) ,,—तय पिय पदवी पाह, बहुरि धरिहै सुन्दर अंग ।

(ध) ,,—निधरक हूँ फिरि पीवहिँगी, अधरामृत सँग ही सँग ।

निधरक हूँ इह अधर अमृत पैह फिरी हूँ सँग ॥

§ उक्त पद (प) प्रति में नहीं हैं ।

१प्रेम-पगे सुनि वचन, आँच-सी लगी आइ जिय ।  
 पिघलि चल्याँ नवनीत, २भीत सुन्दर मौहन-हिय ॥१०९॥\*  
 विहँसि मिले नँदलाल, निरखि ब्रज-बाल गिरह-रस ।  
 जदपि आतपाराम, रमत भए परम प्रेम-रस ॥११०॥  
 निहरत विपिन-विहार, उदार ३-नवल-नँदनदन ।  
 नव-कुमकुम-धनसार, चारु, चरचित चित ४ चढन ॥१११॥  
 अद्भुत-साँवल अग, वन्याँ ५अद्भुत-पीतावरि ।  
 ६मूरति धरै सिंगार, प्रेम-अर ओहँ-हरि ॥११२॥

पाठान्तर—

(च) १—सुनि गोपिन के वचन प्रेम के आँच सी लगी जिय ।

(छ) २—भीत मौहन सुन्दर हिय ।

(य) ,,—नवनीत-सदम हिय ।

उक्त पद (प) प्रति (व) और (ट) में नहीं हैं ।

(ट) ३—रसिक ।

(प) ४—तन ।

(त) ५—तन पीत-वसन मनु ।

(ध) ,,—पट पीत वसन तन ।

(,,) ६—मूरति धरि सिंगार, प्रेम अर पहिरै धनु ।

(ट) ,,—सुफट धरै सिंगार, प्रेम अर पहिरै हरि ।

(प) ,,—प्रेम अर पहिरै धन ।



विलुलित<sup>१</sup> उर-वनमाल, लाल जब चाल चलति वर ।

<sup>२</sup>कोटि-मदन की भीर, उठति उवि लुठति पगन पर ॥११३॥

<sup>३</sup>गोपी जन-मन-गौहन, मौहन लाल बने यों ।

<sup>४</sup>अपनी दुति के उडगन, उडपति घन खेलति ज्यौ ॥११४॥

कुजन-कुजन डोलति, मनु<sup>५</sup> घन तैं घन आवत ।

लोचन त्रिपित-चकोरन के चित<sup>६</sup> चौप चढ़ावत ॥११५॥

सुभ<sup>७</sup>-सरिता के तीर, धीर, बलवीर गए तहें ।

कौमल-मलै-समीर, छपिन की महा-भीर जहें ॥११६॥

पाठान्तर—

(त) १—बिगलति उर बनमाल, लाल जब चलत चाल वर ।

(,,) २—पुनि गिरति घन तर ।

(ध) ,,—कोटि मदन की पीर उठत इत लुठत पगन-तर ।

ॐ उक्त पद्य (क) और (च) प्रति में नहीं है ।

(क) ३—गोपी जन मन गौहन मौहन लाल बने बा ।

(,,) ,,—अपनी दुति के ओज लिपे उडपति खेलति घन ॥

(ट) ,,—अपनी धुति के उजरे-उडपति, मनु खेलति घन ।

(प) ४—“अपनी-अपनी दुति के उडपति घन खेलत ज्यौं ।

(क) ५—जनु घन तैं घन आवन ।

(ट) ,,—मनु चौप यदावन ।

(ट) ७—सुभग चिटप के तीर ।

(त) ,,—सुभग सरित के तीर धीर ।

कुसुम-वृरि धुंधरी कुज, छवि-पुजन आई ।

१ गुजत मजु मलिद, वैनु जनु वजति सुहाई ॥११७॥

इत महकति मालती, चारु२ चपक चित-चोरत ।

उत३ घनसार, तुसार, मिली मदार झफोरत ॥११८॥

४ इत लवग-नय-रग, एलची भेलि रही रस ।

५ उत कुरवक, केवरी, केतकी गय-यध-वस ॥११९॥

इत तुलसी छवि-हुलसी, उँइति ६ परिमल-पूटे ।

उत कमोद-७ आमोद, गोद, भरि-भरि सुख लूटे ॥१२०॥

फूलन-माल बनाट, लाल पहिरति८-पहिरायति ।

सुमन भगोज सुधावर, श्रोज मनोज उढायति ॥१२१॥

पाठान्तर—

(ट) १—गुजत मजु अलिद, वैनु सी वजत सुहाइ ।

(न) २—उते चपक चित छोरत ।

(छ) ३—“श्री ।

(च) ४—वरु ।

(प) ५—इत घनमार तुसार, मलै मदार झफोरत ।

(प) ६—राहवेलि वर एल वेलि, शृगमदहि९ वेलि इत ।

(,.) ७—नय कुरवक, केवरी, केतकी-नाथ यधु-वन ।

(त) ८—प्रथल जु लपटे ।

(क) ९—घममोद गोद भरि भरि सुख दपटे ।

(ट) १०—सुधावत ।

७ उक्त पद्य (क) और (च) प्रति में नहीं हैं ।

रूप भरी, गुणभरी, भरी पुनि परम-प्रेम-रस ।

<sup>१</sup>क्यों न करै अभिमान, भयौ मौहन जिनि के बस ॥१३०॥

<sup>२</sup>नदी-नीर गभीर, तहाँ भल भँवरी परहीं ।

<sup>३</sup>छिल-छिल सलिल न परै, परै तौ छवि नहि<sup>४</sup> करहीं ॥१३१॥

<sup>५</sup>प्रेम-पुज बरधन कारन, ब्रजराज-कुँवर-पिय ।

<sup>६</sup>मजु-कुज में तनऊ दुरे, अति प्रेम-भरे-हिय ॥१३२॥

इति श्रीमद्भागवते-महापुराणे रास-क्रीडा वर्णन  
रसिक जावन-प्राणनाम प्रथमोऽध्याय ।\*

पाठान्तर—

(ट) १—करे क्यों न अभिमान, फान्ह भगवान किए बस ।

(च) ,,—क्यों न करै अभिमान, कियौ मौहन अपने बस ॥

(छ) २—जहाँ नदि-नीर-गँभीर, तहाँ जल भँवरी परई ।

(प) ३—सलिल न परे, छिल छिले, परे पै छवि ना करहीं ॥

(रा०) ४—करई ।

(य) ५—प्रेमहि<sup>६</sup> पुज बड़ावन, कारन प्यारौ मौहन पिय ।

(ट) ,,—प्रेम जु पुज बड़ावन, सिरी ब्रजराज कुँवर पिय ।

(,,) ६—कुज मजु में दुरे नैकु, अति भरयौ प्रेम हिय ॥

⊗ श्रीमद्भागवत् में उक्त अध्याय का नाम “भगवत् रास क्रीडा वर्णन”  
करके लिखा है ।

## द्वितीय अध्याय

'मधुर-वस्तु जे खात, निरतर सुख तौ भारी  
बिच-बिच कटु औ अम्ल, तिक्त तै अति रुचिकारी ॥१॥

'ज्यौ पट पुट के दिऐ, निपट-अति-सरस परै' रँग ।  
'तैसेई रचरु-विरह, प्रेम कौ पुज बढ़ै अँग ॥२॥

पाठान्तर—

(त) १—वस्तु मधुर जो ग्राह, निरतर सुख ह्वै भारी ।  
बीच बीच कटु, अमल, तिक्त, अतिसै रुचिकारी ॥

ॐ राधाकृष्ण दास जी ने उक्त पद्य का पाठ, मूल में इस प्रकार लिखा है—  
ज्यौं बोज परम मधुर मिश्री सो खात निरन्तर ।  
बीच बीच सन्धान, निक्ल-रस अतिसय रुचिकर ॥

(अ) २—जैसे पट पुट दपें, निपट अति चढ़ै सरस रँग ।  
(ब) ,,—ज्यौ पटु पुट के दिपें, निपट ही रसहि परत रँग ।  
(ट) ,,—ज्यौ पट कौ पुट दपे , सरस अति चढ़ै निपट रँग ।

(,) ३—तैसेई रचरु विरह, यदावत प्रेम पुज अँग ॥  
(च) ,,—तैसेई हर विरह, प्रेम के पुज बढ़ै अँग ॥ - -  
(छ) ,,—रच विरह के बढ़ै, प्रेम के पुज प्रगट अँग ॥

- १जिन कौ नैन-निमेष-ओट कोटन-जुग जाहीं ।  
२तिन कौ घर, वन, कुंज, ओट दुख-गनना नाहीं ॥३॥  
३ठगी गई ब्रज-वाल, लाल गिरिधर-पिय-विन यौ ।  
४निधन महा-धन पाइ, 'बहुरि फिरी जाइ खोइ त्यों ॥४॥  
५है गई विरह-विफल सब पूँछति द्रुम, बेली, वन ।  
६को जड़, को चैतन्य, न जानति कछु विरही-जन ॥५॥

पाठान्तर—

- (क) १—जिनके नैननि निमेष ओट, कोटिक-जुग जाहीं ।  
(प) २—तिन कौ गहवर कुंज ओट दुख गनना नाहीं ॥  
(फ) ,,—तिनके ग्रह, वन, कुंज ओट, दुख अगनित आहीं ॥  
(च) ३—रहीं ठगी सी बाल, लाल गिरधर पिय विनु यौं ।  
(प) ,,—ठगी सी रहों ब्रज-वाल ।  
(रा०) ,,—थकि सी रहों ब्रजवाल ।  
(स) ४—निधन महा धन पाइ, बहुरि ज्यों जाइ भई त्यों ॥  
(रा०) ५—बहुरि पुनि जात रहै त्यों ॥  
(त) ६—है गई विरह विफल, मन पूँछति द्रुम, बेली धन ।  
(द) ,,—है गई विरह विफल, सब वृक्षत द्रुम, बेली, वन ।  
(ज) ७—को जड़, को चैतन्य, न जानें कछु विरही जन ॥  
(ट) ,,—जड़ को, को चेतन्य, कछु न जानति विरही जन ॥

१ हे मालति ! हे जाति-ज्योतिषे ॥ सुनि हित दै-चित ।  
मान-हरन, मन-हरन, लाल-गिरि-धरन लखे इत ॥६॥

२ हे केतकि ! इत तैं चितए, कितहूँ पिय रुसे ।

३ कै नँद-नदन मँद-मुसकि, तुमरे मन-मूँसे ॥७॥

४ हे मुक्ताफल-बेलि ! वरँ मुक्ताफल-माला ।

५ निरखे नैन-पिसाल, लाल-मौहन नँदलाला ॥८॥

पाठान्तर—

(क) १—हे मालती ! हे जाति ज्योतिषे ॥ सुनि दै हित चित ।  
मान-हरन मन हरन गिरिधरन लाल लखे इत ॥

(क) २—हे कतकी ! इत तू कितहूँ चितए पिय रुसे ।

(ख) ,,—अहो केतकि ! इत कित हूँ तुम चितए पिय रुसे ।

(घ) ,,—हे कतकी ! कितहूँ इत त चितए पिय रुसे ।

(च) ३—कै मा मौहन मुसकि मन्द, तुव मन मूँसे ॥

(प) ,,—नद नँदन किधो मद मुसकि तुम्हरे मन मूँसे ॥

(फ) ,,—किधो नँद नदन मद मुसकि तुमरेउ मन-मूँसे ॥

(ब) ,,—नँदनदन कै मुरि मुसिकन, तुमरेउ मन मूँसे ॥

(ख) ४—अहो ।

(ङ) ५—देखे नैन पिसाल, मौहना नँद के लाला ॥

(च) ,,—देखे कहुँ पिसाल नैन, तैं नँद के लाला ॥

(झ) ,,—देखे नैन पिसाला, मौहन नँद के लाला ॥

१हे मन्दार उदार वीर ! करवीर महा-मति ।  
देखे कहूँ बलवीर, धीर, मन-हरन धीर-गति ॥९॥

२हे चन्दन ! दुख-दन्दन ! सब की जरनि जुडावौ ।  
नँद-नदन, जग-वदन, चदन, हमहिँ ३वतावौ ॥१०॥

४पूँछौरी ! इन लतन, फूलि रहीं फूलन जोई ।  
सुन्दर-पिय के परसि बिना, अस फूल न होई ॥११॥

५हे सखि ! ए मृग-मधू, इनहिँ किन पूँछौ अनुसरि ।  
६ढहढहे इनके नैन, अबहिँ कहूँ देखे है हरि ॥१२॥

पाठान्तर—

(न) १—अहो उदार मन्दार-धीर ! हर-वीर महा मति ।

तैं देखे बलवीर, धीर, मन-हरन धीर गति ॥

(अ) २—अहो चदन, सुख कदन, दुख सत्र जरत सिरावहु ।

(क) ,,—हे दुख-कदन ! चदन ! सब की जरनि सिरावहु ।

जग-वदन, नँद-नदन, चदा हमैं वतावहु ॥

(ग) ३—मिलावहु ॥

(द) ४—चूम्हुरी ! इन लतनि, फूलि रहीं फूलनि जोई (मौंहीं) ।

सुन्दर पिय कर परसि बिना, अस फूलि न होई (हौंहीं) ॥

(अ) ५—हैं सखि ! ये मृग-मधू ! इनहिँ किन चूम्हु अनुसरि ।

(क) ,,—हे सखि ! हे मृग मधू, इन्हैं पूछौ किन अनुसरि ।

(ग) ६—इनके ढह ढहे-नैन, अबै देखे हैं कहूँ हरि ॥

(रा०) ,,—ढह-ढह इनके नैन, अबहीं कतहूँ चितप हरि ॥

१अहो पवन ! सुभ-गमन, सुगंध २सँग धिर जु रही चलि ।

३दुःख-दवन, सुख-भवन, रवन, कहूँ तेँ चितए बलि ॥१३॥<sup>७</sup>

४अहो चपक बरुकुमुम ! तुमहिँ छवि सय सौ न्यारी ।

५नैकु बतावहु अहो ! जहाँ हरि कुज-बिहारी ॥१४॥<sup>८</sup>

६अहो अय ! अहो निव ! कटँय ! क्यौ रहे मोन गहि ।

७अहो उत्तग बट ! तु ग वीर ! कहूँ तुम उत-उत लहि ॥१५॥<sup>९</sup>

### पाठांतर—

(च) १—अहो सुभग वन सुगंध ! पया सँग धिर जु रही चलि ।

(छ) २—नैसुक धिर दौ रहि ।

(च) ३—सुय के भवन, दुय दवन, रवन इत तेँ चितए बलि ॥

(छ) ४—दु ख दवन औ रवन, कहूँ इत उत है लहि ॥

७ उक्त पद (क) और (च) प्रति में नहीं है ।

(ट) ४—अहो चपक ! अहो कुमुम ! तुमँ सय सौ छवि न्यारी ।

(प) ५—नैकु बताइ जु देहु, जहाँ हरि कुज बिहारी ॥

† उक्त पद हमारी हस्त लिखित प्रति में नहीं हैं और साथ ही (क) प्रति में भी नहा हैं ।

(क) ६—अहो कदंब ! अहो निव ! अंब ! कत रहे मोन गहि ।

(त) ७—अहो उत्तग बट ! सुरँग पीय, कहूँ इत उत तुम लहि ॥

(श०) ८—अहो बटुग सुरग वीर ! कहूँ इत उलहे लहि ॥

‡ उक्त पद 'चन्द्रिका' में नहीं है ।



<sup>१</sup>अहो असोक ! हरि-सोक, लोक-मनि पियहि बतावहु ।  
अहो पनस ! सुख-सनस, मरति <sup>२</sup>तिय अमिय पियावहु ॥१६॥\*

<sup>३</sup>जमुना-तट के विटप-पूछि, भई निपट-उदासी ।

<sup>४</sup>क्यों कहिहैं सखि ! महा-कठिन, तीरथ के वासी ॥१७॥

<sup>५</sup>हे अवनी ! नवनीत-चोर, चित-चोर हमारे ।

<sup>६</sup>राखे कितै दुराड, बतावहु प्रान-पियारे ॥१८॥

पाठान्तर—

(च) १—हे असोक ! हर सोक, लोक मनि पीया बतावै ।  
अहो पनस ! सुभ सरस, मरत तिय अमी पियावै ॥

(रा०) २—तीय सब मरति जियावहु ।

ॐ उक्त पद (क) और (ट) में प्रतियों नहीं हैं ।

(य) ३—जमुन निकट के विटप, बूमि भई निपट उदासी ।  
कहि हैं क्यों सखि ! महा-कठिन ए तीरथ वासी ॥

(च) ४—क्यों कहि हैं सखि ! ए महा कठिन हैं तीरथ वासी ॥

(घ) ५—अहो ।

(च) ६—राखे कनहुँ छिपाइ, कही किा प्रान पियारे ॥

(प) ,,—राखे हैं कित हीँ दुराड, अहो धौँ प्रान पियारे ॥

(च) ,,—राखे कितहुँ छिपाइ, कही धौँ प्राा हमारे ॥

- १हे तुलसी ! कल्याण, सदाँ गोविंद-पद-प्यारी ।  
 २क्यों न कहौ सखि ! नद-नँदन सौँ विधा हमारी ॥१९॥
- ३जहँ आवत तम-पुज, कुज-गहवर तरु-छाँई ।  
 ४अपने मुख-चाँदने, चलति सुन्दरि वन-मोई ॥२०॥
- ५इहि विधि वन-वन हूँदि, पूँछि उनमत की नाई ।  
 करन लगी मन-हरन-लाल-लीला-मन-भाई ॥२१॥
- ६मौहन लाल रसाल हिँ, लीला इनहीं सोई ।  
 ७केवल तनमै भई, न जानै कछु हम कोई ॥२२॥

पाठान्तर—

- (घ) १—बहो ।  
 (ङ) २—क्यों न कहौ तुम, मन मौहन सौँ, विधा हमारी ॥  
 (फ) ,,—क्यों न कहति तू नद नँदन सौँ दसा लु सारी ॥  
 (ट) ,,—क्यों न कहैरी ' नद सुवन सौँ विधा हमारी ॥  
 (प) ३—श्रावैँ जहँ तम पुज ।  
 (य) ,,—जब आइयतु तम गहन कुज गहवर तरु छाँहोँ ।  
 यप अप मुख चाँदने, चलीँ सुन्दर वन मोहोँ ॥  
 (रा०) ,,—अपने मुख चाँदने, चलति सुन्दर तिन मोहोँ ॥  
 (स) ५—इहि विधि वन, वन हूँदि, पूँछि उनमत की नाहीं ।  
 लगी करन मन हरन, लाल-लीला वन भाईँ ॥  
 (ञ) ६—लीला मौहन लाल रसाल की इन ही सोई ।  
 (ट) ७—ता मैं केवल भई, कछु न जानै हम कोई ॥

<sup>१</sup>हरि की सी सब चलनि, बिलोकनि, बोलनि, हेरनि ।

<sup>२</sup>हरि की सी गैयन टेरनि, घेरनि, पट-फेरनि ॥२३॥

<sup>३</sup>हरि की सी वनि आवनि, गावनि अति-रस-रगी ।

हरि-सम कन्दुक रचनि, नचनि, नव-ललित-त्रिभंगी ॥२४॥

<sup>४</sup>स्रीदामा वनि भाम, चढ़ति कोऊ कान्हर-काँधै ।

<sup>५</sup>कोउ जसुमति वनि कान्ह, दाम-गहि ऊखल-वाँधै ॥२५॥

पाठान्तर—

(ट) १—हरि की चलनि, बिलोकनि, हरि की सी हेरनि ।

(प) ,,—चलनि, बिलोकनि, हरि की सी ल्यों अबर-फेरनि ।

हरि सी गौवन घेरनि, टेरनि, हरि की सी हेरनि ॥

(त) २—ल्यों गायन चारन, घेरनि, मुख-टेरनि खेलनि ॥

ॐ उक्त पदावली से लेकर, “कोउ गिरिवर अबर कौ करि,  
घरि बोलति तय, निघरकि इहि तर होहु गोप, गोपी,  
गोधन, सब ।” ये पाँच—छंद, हमारी और (अ) (क) (य) तीन प्रतियोग  
में नहीं हैं ।

(च) ३—हरि सी वन तै आवनि, गायन सँग रस रंगी ।

ल्यों हीं कन्दुक-रचनि, नचनि, गति सरस त्रिभगी ॥

(छ) ,,—हरि की सी वनि बनतैं आवन, गावन रस रगी ।

हरि सी गैन्दुक रचन, नचन, पुनि हीं त्रिभंगी ॥

(ट) ४—कोऊ सिरीदाम दुभाम, चढ़ति कान्हर के काँधै ।

(प) ,,—कोउ सिरीदामा होइ ।

(त) ,,—कोउ दामा हूँ भाम, चढ़ै कान्हर के काँधै ।

(च) ५—जसुमति हूँ कोउ कान्ह, दाम तै ऊखल बाँधै ॥

(त) ,,—जसुमति वनि बलि बाल, लाल ऊखल सौ बाँधै ॥

कोउ जमलार्जुन भजति, गजति-काली-बल कौ ।

कोउ कहै मूँदहु नैन, सोच नहिँ टापानल कौ ॥२६॥<sup>७</sup>

<sup>१</sup>कोउ गिरिवर अमर कौ रुग्-धर बोलति हैं तत्र ।

निधरक इहिँ तर रहौ, गोप, गोपी, गोधन सत्र ॥२७॥

<sup>२</sup>भृगी-भै ते भृग होइ, जव<sup>३</sup> कीट-महा-जड ।

<sup>४</sup>कृष्ण-प्रैम ते कृष्ण होइ, <sup>५</sup>तत्र का अचरज-बड ॥२८॥

<sup>६</sup>तत्र पायौ पिय-पद-सरोज का रुचिर-खोज तहँ ।

<sup>७</sup>अरिदर, अकुस, कमल, कलस, <sup>८</sup>धुज, जगमगत जहँ ॥२९॥

पाठान्तर—

उक्त पद 'राधाकृष्णदाम जी सं० पुस्तक' नगरा प्रचारिणी वाली प्रति म नहीं हैं ।

(क) १—कोउ इक अमर कौ गिरिवर कर धर बोलत तत्र ।

निहडर इहि तर रहौ, गोप, गोपी, गाहन सत्र ॥

(च) २—भृ गी भय ते भृ ग होत, इकु कीट महा-जड ।

(रु) ३—यह ।

(ग) ४—ज्यों ।

(ट) ५—कृष्ण प्रैम ते कृष्ण होइ, यह नहिँ अचरज—बड ॥

(च) ६—कहु अचरज नहिँ बड ॥

(भ) ७—कृष्ण भगति ते कृष्ण होन, कहु नहिँ अचरज बड ॥

(य) ८—पायौ तत्र पिय पद सरोज कौ, रुचिर-खोज तहँ ।

(श्र) ९—अरिदर अकुस कलस कमल अति जगमात जहँ ॥

(च) १०—यह, गद, अकुस, कुलिस, कमल, धुज जगमात जहँ ॥

(ज) ११—द्वयि जगमगत जहँ ॥

१ जो रज सिय, अज रजोत, जोजत जोगी-जन हिय ।

२ सो रज बदन करन लगौं, सिर-धरन लगौं तिय ॥३०॥

३ पुनि निरिखे ढिँग जगमगात, पिय-प्यारी के पग ।

४ चितै परसपर चकित भई, जुरि चली तिहीं मग ॥३१॥

५ चकित भई सब कहति जात, बड-भागिन को अस ।

६ परम-कांत एकात पाइ, पीवति अग्रन-रस ॥३२॥

पाठान्तर—

(अ) १—जो रज अज, सिय, कमला, दू डति जोगी जन हिय ।

(रा०) ,, —जो रज सिय, अज, कमला रजोत जोगी-जन हिय ।

(ट) २—सो रज बदन करति, धरति सिर बार-बार तिय ॥

(रा०) ,, —ते सब बदन करन लगौं, सिर धरन लगौं तिय ॥

(अ) ३—पुनि पेखे अति जगमगात, ढिँग प्यारी के पग ।

(च) ,, —तब देखे ढिँग जगमगात, प्यारी तिय के पग ।

(रा०) ,, —देखे ढिँग जगमगात, तहाँ प्यारी—तिय के पग ।

(अ) ४—चकित भई सब चितै, परसपर चलौं तिहीं मग ॥

(क) ५—चकित चितै सब कहै कौन यह बड भागिन अस ।

(छ) ,, —चकित भई सब कहति कौन यह बड भागिन-अस ।

(क) ६—परम कांत एकात पाइ, पीवति जु अग्ररस ॥

(छ) ,, —परम कांत एकात पाइ, पीवत जु अग्ररस ॥

❖ उक्त पद (अ) और (क) दो प्रतिभों में नहीं हैं ।

- १ आगँ चलि अबिलोकी, इक नव-पल्लव-सैनी ।  
 २ जहँ पिय निज कर कुसुम, सुसुम लै गूथी येनी ॥३३॥  
 ३ तहँ पायौ इक मजु-मुरुर, मनि-जदित विलोलै ।  
 तिहिँ पूछति ब्रज-बाल, विरह-वसँ सोऊ न गोलै ॥३४॥  
 ४ तरक करँ आपुस में, कहौ इहि क्यौ कर लीन्हौ ? ।  
 ५ तिन मधि हिय की जानि, कोऊ यह उत्तर दीन्हौ ॥३५॥

पाठान्तर—

- (ट) १—चलि आगँ अबिलोकी, नव नव पल्लव सेनी ।  
 (रा०) , —आगँ चलि गुनि अबिलोकी, नव पल्लव सैनी ।  
 जहँ पिय कुसुम, सुसुम हाथ लै गूथी येनी ॥  
 (रा०) २—जहँ पिय कुसुम, सुसुम लै सुकर गुदी है येनी ॥  
 (त) , —जहा कुसुम ले हाथ पिया, रचि गूथी येनी ॥  
 (ट) ३—पायौ तय इक मुकर मजु मनि जदित विलोलै ।  
 पूछति तिहि ब्रज-बाल, विरह सौँ सोऊ न गोलै ॥  
 (ठ) ४—भरि ।  
 (च, ५—करति तरक आपस में, कहौ कर यह क्यौ लीनों ? ।  
 (रा०) , —तक करत अपमाहिँ, अहो यह क्यौ कर लीन्हौ ? ।  
 (प) ,, —करँ तरक ब्रज बाल, अहो यह कर क्यौ लीनों ? ।  
 तिन में कोऊ तिनके हित फौ, नहिँ उत्तर दीनों ॥  
 (च) ६—तिन में कोऊ तिनके हित फी, जिन उत्तर दीनों ॥  
 (फ) ,, —तिन मधि तिन के हिय फी, जानि इक उत्तर दीनों ॥  
 (ग०) ,, —तिन में तिनके हिय फी जानि, उन उत्तर दीन्हौ ॥

- १वैनी-गूधन-समै, छैल पाछै बैठे जब ।  
 २सुन्दर-वदन विलोकन-सुख कौ अत भयौ तव ॥३६॥  
 ३तातैं मजुल-मुकर, मुकर लै बाल दिखायौ ।  
 स्त्री मुख कौ प्रतिविंब सखी ! तव सनमुख आयौ ॥३७॥  
 ४धन्न कहति भई ताहि, नाहिँ कछु मन मैं कोपीं ।  
 निरमतसर जे सत, तिननि चूरामनि-गोपीं ॥३८॥  
 ५उन नीके आराधे, हरि-ईस्वर-वर जोई ।  
 ६तातैं अधर-मुधा-रस, निधरक पीवति सोई ॥३९॥

---

पाठान्तर—

- (अ) १—गूधन वैनी समै, लाल, बैठे पाछै जब ।  
 (ब) ,,—पटियनु गूधनि समै, लाल पाछै बैठे जब ।  
 (रा०) ,,—वैनी गूहन समय, छबीलौ पाछै बंठी जब ।  
 (ब) २—वदन बिलोकत सुन्दर सुख कौ, भयौ अत तव ॥  
 (रा०) ,,—सुन्दर वदन विलोकनि, पिय के अन्तस भयौ तव ॥  
 (अ) ३—मजुल-मुकर सुकर लै, तातैं बाल दिखायौ ।  
 सखि ! श्रीमुख-प्रतिविंब, तवै उन सनमुख आयौ ॥  
 (अ) ४—कहित धन्य भई ताहि कछु मन नाहिँन कोपीं ।  
 निरमतसर-सतन की हैं, चूरामनि-गोपीं ॥  
 (प) ५—नीकें उन आराधे, इस्वर वर हरि जोई ।  
 निधरक तातैं अधर-मुधा रस पीवति सोई ॥  
 (ट) ६—तातैं अधरामृत निधरक, अति पीवति सोई ॥  
 (त) ,,—तातैं अधरामृत अति निधरक, पीवति सोई ॥  
 (रा०) ,,—तातैं निधरक अधर-मुधारस, पीवत सोई ॥

सोऊ पुनि अरिमान-भरी, यौ कहनि लगी तिय ।  
मो पै चलयौ न जाइ, जहाँ तुम चलन चँहत पिय ॥४०॥

<sup>१</sup>पुनि आगै चलि तनिक-दूरि, देखी सोई ठाढ़ी ।  
<sup>२</sup>जासौ सुन्दर-नद-कुँवर-पिय, अति-रति बाढ़ी ॥४१॥

<sup>३</sup>गोरे-तन की जोति, छूटि छरि छाड़ रही धर ।  
<sup>४</sup>मानौ ठाढ़ी सुभग-कुँवरि, कचन-अयनी पर ॥४२॥

<sup>५</sup>घन तै विछुरि वीजुरी, जनु मानिन-तनु फाछैं ।  
कियो चंद सौ रुसि, चन्द्रिका रहि गई पाछै ॥४३॥

पाठान्तर—

(क) १—आगै चलि पुनि नैकु-दूरि, देखी सोई ठाढ़ी ।  
सुन्दर-नद-कुँवर पिय की, जासौ रति बाढ़ी ॥

(ख) २—जासौ-नद-सुवन पर पिय की, अति-रति बाढ़ी ॥

(ग) ,,—जासौ सु-दर-नद-सुवन पी, अति रति बाढ़ी ॥

(घ) ३—तन-गोरे तै ज्योति, छूटि छवि छाड़ रही यौ ।  
ठाढ़ी मानौ सुभग-कुँवरि, कचन अयना स्यौ ॥

(च) ४—मानौ कुँवरि-सुभग ठाढ़ी, अयनी-कचन स्यौ ॥

(रा०) ,,—मानौ ठाढ़ी कुँवरि, सुभग-कचन अयनी पर ॥

(प) ५—जनु घन तै विछुरी विजुरी, मानिन-तनु-फाछैं ।

(रा०) ,,—घन तै जनु विछुरी-विजुरी, मानिन-तनु फाछैं ।

(ट) ,,—विछुरि वीजुरी जनु घन तै, नूतन-छवि फाछैं ।



<sup>१</sup>नैननि तै जलधार, हार-धोवति धरि-धावति ।  
भँवर उडाड नहिँ सकति, वास वस मुख-ढिँग आवति ॥४४॥

कासि-कासि पिय-महाबाहु, यौ वटति अकेली ।  
<sup>२</sup>महा-विरह की धुनि सुनि, रोवत खग, मृग, बेली ॥४५॥

ता सुन्दरी की दसा, देखि कछु कहति न आवै ।  
<sup>३</sup>विरह-भरी-पूतरी होइ तौ, कछु छवि पावै ॥४६॥<sup>७</sup>

<sup>४</sup>धाइ भुजन भरि लई, सवन लै-लै उर लाई ।  
मनौ महा-निधि खोइ, मध्य<sup>५</sup> आधी-निधि पाई ॥४७॥

पाठान्तर—

(अ) १—नैननि के जल हार, हियौ, धोवति धरि धावति ।

(प) ,,—नैननि तै जलधार, बहति अविरल अति धावति ।

भँवर उडाइ न सकति, वास यस जे ढिँग आवति ॥

(अ) २—विरह भरी की धुनि, सुनि रोवति खग, हुम, बेली ॥

(च) ३—विरह-भरी पुतरी जु होइ, त्यों असि छवि पावै ॥

७ उक्त पद (भू) और (ट) प्रति में भी नहीं हैं । तथा राधाकृष्ण दासजी संपादित प्रति में भी नहीं हैं ।

(ट) ४—भुजन धाइ भरि लई, सवन लै ले लाई ।

(रा०) ,,—दौरि भुजन भरि लई, सवन लै लै उर लाई ।

(ह) ५—धीच ।

(रा०) ,,—मुझ ।

१कोउ चुमति मुख-कमल, कोऊ भ्रू, भाल, सु अलकै ।  
जामे पिय-संगम के सुन्दर, स्रम-रुन भलकै ॥४८॥

२पौउति अपने अचल, रुचिर-दृगचल तिय के ।

३पीरु-भरे सुरूपोल, लोल-रद-छद जहँ पिय के ॥४९॥

४तिहि लै तहँ तैं अहुरि-बहुरि, जमना-तट आई ।

५नँद-नदन जग-बदन पिय जहँ, लाइ-लडाई ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम-स्कन्धे रास क्रीडाया  
'गापी विग्लेष' वर्णनो नाम द्वितीयोऽध्याय ॥३॥

पाठान्तर—

(च) १ - चुमति कोउ मुख-कमल, कोऊ भ्रु सुधारति अलकै ।

(अ) ,, — चुमति कोऊ मुख कमल, कोऊ भ्रुज, भाल, सु अलकै ।  
ताम सुन्दर स्वाम पी मञ्जुल-वम-वन भलकै ॥

ल उक्त पद्य (क) प्रति में नहीं है ।

(च) २—अपने अचल, रुचिर-दृगचल पौउति तिय के ।

(छ) ३—ती के ।

(च) ४—पीरु-भरे सु रूपोल, लोल-रद नग-दुत पिय के ॥

(छ) ५—पी के ।

† इसस पद्य पा पद्य और उक्त पद्य (क) धोर (ट) प्रतियों में नहीं हैं ।

(प) ६—लै तहँ तैं तिहि अहो ! बहुरि तट-जमना आइ ।

(रा०) ,, — जित-तित तैं मय अहुरि, बहुरि-जमुना तट आई ।

(प) ७—नँद-नदन मा मीहन पिय, जहँ लाइ लडाई ॥

(रा०) , — नहँ नँद नदन जग बदन पिय, लाइ लडाई ॥

३३मूल भागवत म उक्त अध्याय का "कृष्णान्वेषण" नाम लिखा है ।

## तृतीय-अध्याय

<sup>१</sup>कहनि लगी अहो कुँवर-कान्ह ! प्रगटे ब्रज जब तैं ।

<sup>२</sup>अवधि-भूत-इन्दिरा-अलंकृत है रही तव तै ॥१॥

<sup>३</sup>अति सै-सुख-सरसावत, ससि ज्यौ बढत विहारी ।

पुनि-पुनि प्यारे ! गोप-बधू प्रिय निपट तिहारी ॥२॥\*

<sup>४</sup>नेन-मूँदिवौ महा अख ले हॉसी-फॉसी ।

फित भारत हौ सुरतनाथ ! विनु-मोल की दासी ॥३॥

पाठान्तर—

(य) १—लगीं कहनि यौं कान्ह कुँवर, ब्रज प्रगटे जब तैं ।

(रा०) २—अवधि-भूत इन्द्रादि हहाँ क्रीडत है तव तैं ॥

(य) ३—सब फौं मुख सरसावत, ससि ज्यौं बढति हडारी ।

(रा०) ॥—सब फौं सब-सुख सरसत, सरसत बड़-हितकारी ।

तिन में पुनि ण-गोप बधू प्रिय निवृट तिहारी ॥

❖ उक्त पद (क) प्रति में नहीं हैं ।

(ट) ४—महा-अख ले नेन मूँदिवौ, हॉसी की फॉसी ।

भारत हौ क्यों (फत) सुरतनाथ, विनु-मोलहि दासी ॥

पिप तै, जल ते, ब्याल-अनल तै, टामिनि-भर तै ।  
 यौ राखीं ! नहिं मरन दई ! नागर-नग-धर तै ॥४॥

जनु जसुधा ते प्रगट भए, पिय ! अति इताराने ।  
 स्व-कुसल-कारन विधना, <sup>३</sup>त्रिनती-करि आने ॥५॥

अहो मित्र ! अहो प्रान-नाथ ! इहि अचरज-भारी ।  
 पने जन कौ मारि, करहु का की रखवारी ॥६॥

व पसु-चारन चलत, चरन-फोमल-धरि वन मै ।  
 सिल, तून, रुटक अटकत, रुसकत हमरे-मन मै ॥७॥

टान्तर—

(अ) १—बिप-जल तै औ ब्याल अनल पुनि दामिनि भर त ।

(रा०) ,,—बिप जल तै, ब्याल तै, अनल तै, घपला-भर तै ।

राखीं क्यों ! मरन दई नहिं, नगधर-नागर तै ॥

(अ) २—जय तै जसुधा-सुत न भए, तब तै इतराने ।

(च) ,,—जनु तुम जसुधा-सुत न भए पिय अति-इतराने ॥

(र) ,,—जसुधा सुत जनु तुम न भए पिय बहु इतराने ।

बिस्व कुमल के काग, अहो घिाती करि आने ॥

(च) २—बिधि न त्रिनती कै आने ॥

(रा०) ४—अहो मीत ! अहो प्रान-नाथ ! यह अचरज-भारी ।

अपननि जौ मारि हा, करि हाँ फाकी रखवारी ॥

(रा०) ५—मिल तिन फटक, अटरु, फारक हमरे मन म ॥

अजहूँ नाहिँन कलु विगर्यो, रचरु पिय आवौ ।  
मुरली काँ जूठाँ अपरामृत, आड पियावौ ॥१६॥

<sup>१</sup>फनी-फनन पै अरपे डरपे, नैकु नाहिँ तव ।  
छतियनुपै पग धरत, डरत कित कुँवर-कान्ह अव ॥१७॥

<sup>२</sup>जानति है हम, तुम जो डरत ब्रजराज-दुलारे ।  
कौमल-चरन-सरोज, उरोज कठोर हमारे ॥१८॥

<sup>३</sup>सनै-सनै पग धरिय, हमै पिय निपट-पियारे ।  
<sup>४</sup>कित अटवी महँ अटत, गडत तृन कूर्प-अन्यारे ॥१९॥

पाठान्तर—

(क) १—फनी फनन पर डरपे अरपे, नाहिँन नैकु तव  
छुबिलि छतिन पग धरत, डरत क्यों कान्ह कुँवर अ

(च) २—जानत हैं हम कुँवर-कान्ह । ब्रजराज दुलारे ।

(छ) ॥—हम समुझी यह तुम जु डरत-ब्रजराज-दुलारे ।

(अ) ३—सनै सनै धरिये पिय । हमको अधिक पियारे ।

(च) ॥—हरै-हरै पग धरिये, हमै प्य अति हो पियारे ।

(छ) ॥—हरै-हरै धरि पीय, हमहिँ तौ प्रान—पियारे ।

(च) ४—कित अटवी में अटत, अकुर-ककर न्यारे ॥

(प) ॥—कित अटवी महिँ अटत, गडत तृन कुस अनियारे ॥

(ट) ॥—हा । अटवी में अटत, गडत तृन कुलिस अनियारे ॥

(त) ॥—कत अटवी महिँ अटत, गडत तृन कूट न न्यारे ॥

जदपि परम-सुख-गाम, स्याम-पिय कौ लीला-रस ।

तदपि तिनहिँ अमलोकन-विनु, अकुलाइ गई अस ॥२०॥<sup>७</sup>

ज्यौ चढन, चद्रमा, तपन त सीतल करही ।

पिय-निरही जे लोग, तिनहिँ लागि आग पितरही ॥२१॥<sup>†</sup>

छिन वैदत, छिन उदत, सुलोटत अति रज माहीं ।

थोरे-जल ज्यौ दीन-मान, आतुर अकुलाहीं ॥२२॥<sup>‡</sup>

इति श्रीमद्भागवते महा पुराणे दशमस्कन्धे रास क्रीडाया

“गोपिका गीत उपालम्भोभवरसानं नाम तृतीयोऽध्याय ।§

—: ० —

७ उक्त पद्य (क) प्रति और नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नहीं है ।

† उक्त पद्य नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नहीं है ।

‡ ' तदपि परम सुख गाम स्याम पिय कौ लीला रस ' से लेकर और उक्त छन्द तक की पदावली छपी हुई प्रतियों में (च) (प) (ट) में ही मिलती है, अन्यत्र नहीं । नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में भी नहीं है ।

§ मूल भागवत में इस अध्याय का नाम “गोपी गीत” लिखा है और नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में “गोपिका गीत उपालम्भ-वर्षानं” नाम लिखा है ।

## चतुर्थ अध्याय

<sup>१</sup>इहि विधि प्रेम-सुधा-निधि, बढ गई अघिक-कलोलें ।

<sup>२</sup>बिहल हें गई बाल, लाल सौ अलबल-बोलें ॥१॥

<sup>३</sup>तब तिनहीं में प्रगट भए, नंद-नदन-पिय यौ ।

<sup>४</sup>दृष्टि-बद करि दुरै, बहुरि प्रगटै नट-वर ज्यौ ॥२॥

<sup>५</sup>पीत-वसन-वनमाल धरै, (लए) मजुल-मुरली हथ ।

मद-मद मुसिकात, निपट मनमथ के मन-मथ ॥३॥

### पाठान्तर—

(क) १—यदि गई प्रेम सुधा निधि में कछु अधिक कलोलें ।

(ख) ,,—इहि विधि प्रेम सुधानिधि-मधि यदि गई अघिक कलोलें ।

(रा०) ,,—यह विधि प्रेम सुधा निधि में अति उड़ी कलोल ।

(च) २—हैं गई बिहल (बिहल) बाल, लाल सौ अलबल बोलें ॥

(अ) ३—तिनहीं में नब प्रगट भए, नागर नगधर यों ।

(रा०) ,,—नब तिनहीं में, तैं निकसे नंद नदन पिय यों ।

(अ) ४—बद दृष्टि करि दुरै, बहुरि प्रगटै नटवर यों ॥

(रा०) ,,—दृष्टि बज के दरै, बहुरि प्रगटै नटवर यों ॥

(रा०) ५—पीत वसन वनमाल, पनी मजुल मुरली हथ ।

मद मधुर तर हँसत, निपट मनमथ के मनमथ ॥

१पियहिँ निरखि तिय-चृन्द, उठे सत पकु बेर यो ।

२फिरि आए घट प्रान, बहुरि जागति इन्दी ज्यो ॥४॥

३महा-दुधित की भोजन त ज्यो प्रीति सुनी है ।

ताहूँ तैं सत-गुनी, सहस्र कै कोट-गुनी है ॥५॥

४दौरि लिपटि गई ललित-लाल, सुख कहत न आव ।

मीन उछरि ज्यो पुलिन परे पै पानी पावै ॥६॥\*

पाठान्तर—

(च) १—देखि पिया त्रिय चृन्द उठे, तब पकु बेर या ।

(रा०) ,,—पियहिँ निरखि तिय चृन्द उठा सब इकै वार यो ।

(च) २—आये पुनि घट प्रान, बहुरि उभक्त इन्दी ज्यो ॥

(रा०) ,,—परिघट आए प्रान, बहुरि उभक्त इन्दी ज्यो ॥

(प) ३—भोजन सों ज्यो महा दुधित की, प्रीति सुनी है ।

ताहूँ हूँ सत-गुनी, सहस्र सौ कोटि—गुनी है ॥

(पा) ४—महा दुधित की जैसे असत सों प्रीति सुनी है ।

ताहूँ सतगुनी, सहस्र पुनि कोटि गुनी है ॥

(च) ४—लिपटि गई पुनि ललित-लाल, छवि कहति न आव ।

मीन उछरि ज्यो पुलिन परे, पुनि पानी पावै ॥

\*यद्यपि उक्त छंद (श्र) (प) (त) प्रतियों में ही मिलता है जैसा कि पहिले लिखा गया है, अतः यहाँ हमें उद्धृत किये योग्य प्रधानक पा सिद्ध मिला ही नहीं था, इसलिये हमें उद्धृत करना पड़ा । गौरी प्रचारिणी द्वारा प्रकाशित प्रति में उक्त पं पं पं पं आग है और इसका पाठान्तर निम्न प्रकार है । यथा—

दौरि लिपटि गई ललित विष दिँ कहत न पनि आवहि ।

मीन उछरि जम परहिँ पुनहिँ पुनि पानी पावहि ॥



<sup>१</sup>कोऊ चटपट झपटि जाड, उर-उर सौ लपटी ।

<sup>२</sup>कोउ गर-लपटी कहति, भले जू कान्हर रूपटी ॥७॥

<sup>३</sup>कोउ नागर-नगर की गहि रही दाउ-रु पटकी ।

ज्यों नव-घन तै सटकि दामिनी, टॉमन अटकी ॥८॥

<sup>४</sup>कोऊ पिय-भुज लटकि, मटकि रही नारि-नबेली ।

<sup>५</sup>जनु सुन्दर-सिंगार-विटप, लपटी छवि—बेली ॥९॥\*

#### पाठान्तर—

(क) १—कोऊ चटपट मौं कर लपटी, कोऊ उरवर सौं लपटी ।

(प) ,,—कोऊ करसौं लपटी धाड, कोऊ उर सौं लपटी ।

(रा०) ,,—कोउ चटपटि उर लपटी, कोउ करवर लपटी ।

गर सौं कोऊ लपटी कहति, तुम कान्हर रूपटी ॥

(रा०) २—कोउ गरे लपटी कहति, भलै-भलै कांहर रूपटी ॥

(ना प्र) ३—कोउ नगर-वर पिय की, गहि-गहि परिकर पटकी ।

जनु नव घन तें सटकि, दामिनी घटा सो अटकी ।

(क) ४—कोउ पिय भुज सी मटकि, लटकि रही नारि नबेली ।

(रा०) ,,—कोउ पिय-भुज लिपटाय, रही नव-नारि नबेली ।

(क) ५—जनु जपटी सिंगार विटप, सुन्दर छवि बेली ॥

\* उक्त पद्य (अ) प्रति में नहीं है ।

१कोउ कौमल पद-कमल, कुचन पै राखि रही यौ ।

२परम-कृपन-धन-पाइ, हिए सो लाइ रहत त्या(ज्यौ)॥१०॥\*

३कोऊ पिय को रूप, नैन-भग उर-धरि ध्यावत ।

४मधु-मोखी ज्यौ देखि, दसो-दिसि अति-छवि पावत ॥११॥ †

५कोउ दसनन दै अग्र-पिन, गोपिन्दहिँ ताडति ।

६कोउ इक नैन-चकोर, चार-मुख-चद निहारति ॥१२॥ ‡

पाठान्तर—

(अ) १—कोऊ पद कमल कुचन कौमल बिच राखि रही यो ।

(रा०) ,, —कोउ कमल पद कमल कुचन बिच राखि रही यो ।

(अ) २—निधन परम धन पाइ हिए सा लाइ रहति ज्यौ ॥

\*उक्त पद्य (क) प्रति में नहीं है ।

(अ) ३—पिय को कोऊ रूप न भरि उरधरि आवत ।

(रा०) ,, —कोउ पिय रूप नयन भरि उर में, धरि धरि धावति ।

(अ) ४—मधुर, मिष्ट ज्याँ तृष्टि दसो दिसि अति छवि छावत ॥

(रा०) ,, —मधु मोखी लोँ डोढि दुहँ दिसि, अति छवि पावत ॥

†उक्त पद्य (क) प्रति में नहीं है ।

(अ) ५—दसन दावि कोउ अघर विन्ध, गोपिन्दहिँ ताडत ।

(रा०) ,, —कोउ दसननि दलिअघर विन्ध, गोपिन्दहिँ ताडत ।

(अ) ६—करि कोऊ नैन चकोर लाल मुख चंद निहारति ॥

(रा०) ,, —कोउ एक चार चकोर चम्बनि मुख चंद निहारति ॥

‡उक्त पद्य (क) और (ख) प्रति में नहीं है ।

१ कहुँ काजर, कहुँ कुमकुम, कहुँ इक पीरु-लीक वर ।  
अस राजत ब्रजराज-कुँवर, कन्दर्प-दर्प हर ॥१३॥

२ बैठे सब पुनि पुलिन, परम-आनंद भयो है ।

३ उमिलिन अपने छादन, छवि सौ छाड़ दयो है ॥१४॥

४ एक-एक हरि-देव, सवन के आसन वैसे ।

किए मनोरथ पूरन, जिनके उपजे जैसे ॥१५॥\*

५ ज्यौ अनेक जोगेसुर, जिय में ध्यान धरत है ।

एक बेर ही एक-रूप हैं, सुख वितरत है ॥१६॥†

### पाठान्तर—

(रा०) १—कहुँ काजर, कहुँ कुमकुम, कहुँ कहुँ-पीक लाक वर ।  
तहँ राजत नंद नठ कन्द, कंदर्प दर्प हर ॥

(क) २—बठ जाइ पुलिन प, परम अनन्द भयो है ।

(ख) ३—बठे पुनि उहिँ पुलिन परम आनन्द भए हैं ।

(रा०) ३—छविता अपने छादन छवि सा विछाड़ दए ह ॥

(अ) ४—एक एक हरिदेवा सयहिँ आसन पै रसे ।

पूरन किए मनोरथ जाके उपजे जैसे ॥

\* उक्त पद राधाकृष्णदास संपादित प्रति में नहीं है ।

(प) ५—जो अनेक जोगीरजर, हिय म ध्यान धरत है ।

एकहिँ बेर रूप इअ सय काँ सुख वितरत हैं ॥

† उक्त पद राधाकृष्णदास जी संपादित प्रति में नहीं है ।

जोगी-जन बन जाट, जलन करि कोटि-जनम पचि ।

<sup>१</sup>अति-निरमल करि राखत, हिय में आसन रचि-रचि ॥१७॥\*

<sup>२</sup>तोऊ तहँ नहिँ जात, नवल-नागर-सुन्दर-हरि ।

<sup>३</sup>ब्रज-जुगतिन के सो अवर बँठे अति-रचि करि ॥१८॥†

<sup>४</sup>कोटि-कोटि ब्रह्माट, जदपि एरुहिँ ठकुराई ।

पै ब्रज-देविन-सभा, साँररे अति-उपि पाई ॥१९॥

<sup>५</sup>ज्यौ नव-डल-मडल में, कमल-रुगनिका भ्राजे ।

<sup>६</sup>त्यौ सय सुन्दरि-सनमुख, सुन्दर-स्याम विराजै ॥२०॥

पाठान्तर—

(रा०) १—अति निरमल करि-करि राखत रचि हिय रचि आसन रचि ।

ऊक्त पद्य (५) प्रति स नहीं है ।

(च) २—कजु छिन हूँ नहिँ जात, तहा नागर सुन्दर हरि ।

(रा०) ,, —कजु छिनात तहँ जात नवल नागर मोहन हरि ।

(च) ३—ब्रज-जुगतिन के अवर बँठे सो अति रचि करि ॥

(रा०) ,, —धन की तियन के अवर पर बँठे अति रचि करि ॥

† "जोगी-जन बन जाट, जलन करि कोटि जनम पचि" से लेकर

"तोऊ तहँ नहिँ जात नवल नागर सुन्दर हरि" ये दोनों छंद (क) (च)

(प) तीन प्रतियों में नहीं है ।

(क) (८) ४—कोट काट ब्रह्मांड और इन्तही ठकुराई ।

ब्रज देविन की सभा, साँररे अति छपि पाइ ॥

(५) ५—सय सुन्दरि के समुप, र्यौ अति स्याम विराजै ।

ज्यौ मडल नव डल में, कमल करनका भ्राजे ॥

(५) ,, —ज्यौ नव डलनि कमल मडलहिँ करिंका भ्राजे ।

(रा०) ६—त्यौ सय सापिन सामुख, सुन्दर स्याम विराजै ॥

<sup>१</sup>वृष्णि लार्गी नवल-वाल, नँदलाल-पियहिँ तत्र ।  
प्रीति-रीति की वात, मनहिँ मुसिकाति जाति सव ॥२१॥

## गोपी प्रश्न

<sup>२</sup>इऊ भज ते कौ भजै, एक विनु-भजते भज ही ।  
<sup>३</sup>कहौ कृष्ण ! वे कौन आहिँ, जो दोउन तज हीं ॥२२॥

## कवि कथन

<sup>४</sup>जदपि जगत-गुरु नागर, नगधर, नंद-दुलारे ।  
<sup>५</sup>ते गोपिन के प्रेम-विषस, अपनेइ-मुख हारे ॥२३॥

पाठान्तर—

- (क) १—वृष्णि लार्गी नवल वाल, नँदलाल पिया तत्र ।  
(रा०) ,,—वृष्णि लार्गी ब्रज जुगति जुगति ही जुगति पियहिँ तत्र ॥  
(च) २—इक भजते कौ भजै, भजै विनु एऊ जु भजही ।  
(रा०) ,,—इक भजतनिकौ भजै, एक अन भजतनि भजही ।  
(च) ३—काह ! कहौ ते षषा अहेँ जे दोऊ तजहीं ॥  
(रा०) ,,—कहो कान्ह ते कवन आहिँ, जे दुहुअनि तनहीं ॥  
(रा०) ४—जदपि जगत गुरु नागर, जसुमति नन्द दुलारे ।  
(प) ५—तदपि गोपियन प्रेम विषम, अपने मुख हारे ॥  
(च) ,,—गोपिन के ह्ये प्रेम, विषसि, मुख अपने हारे ॥  
(रा०) ,,—वै गुपियन के प्रेम अम्र, अपने मुख हारे ॥

## भगवान का उत्तर

१ तब बोले ब्रजराज-कुँवर, हौं रिनी तिहारौं ।  
अपने-मन तें दूरी करौं, किनि दोष हमारौं ॥२४॥

२ कौटि-कल्प लागि तुम प्रति, हौं उपकार करौं जो ।  
हे मनहरनी-तरुनी ! उरिनी नाहिँ होउँ तौ ॥२५॥

३ सकल-विस्तु अप-वस करि, मो-माया सोहति है ।  
४ प्रेम-मई तुम्हरी माया, मो-मन माहति है ॥२६॥<sup>१६</sup>

---

पाठान्तर—

(प) १—बोले तब ब्रजराज राज हौं अनी तिहारौं ।  
मन अपने तें करौं दूरि सब दोष हमारौं ॥

(रा०) „—तब बोले पिय नव जिमोर हम अनी तिहारौं ।  
अपने हिय तें दूरि करौं सब दोष हमारौं ॥

(ट) २—कल्प काटि लई हौं तुम प्रति प्रति उपकार करौं जो ।  
हे तरुनी मनहरनी उरिनी हौं नहिँ तौ ॥

(रा०) „—कौटि कल्प लागि तुम प्रति प्रति उपकार करौं जो ।  
हे मनहरनी, तरुनी, अजन न होउँ तथा तौ ॥

(रा०) ३—मोह मई तुम्हरी माया सोह, मोहि मोहति है ॥

१ तुम जु करी सो कोउ न करै, सुनि नवल-किसोरी ! ।  
२ लोफ-बेट की सुदढ-सृ खला, तृन-सम तोरी ॥२७॥

इति श्री मद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे राम क्रीडायां  
गोपी विरह तापेऽप्यमनोनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥\*



---

पाठान्तर—

- (रु) १—तुम जो करी सो न करे कोऊ अहो नवल<sup>१</sup> किसोरी !  
(रा०) ,,—तुम जु करी सो कोउ न करी हे नवल किसोरी ? ।  
(फ) २—लोफ, बेट की सुदढ-माँकरी, तृन ज्यौ तोरी ॥

\* श्रीमद्भागवत में उक्त अध्याय का नाम “गोपी सान्त्वितम्”  
लिखा है ।

## पंचम अध्याय

१पिय के सुनि रस-वचन, काम सय छाँड़ि दयो है ।

२विहँसि-विहँसि निज-कठन, लाल लगाइ ल्यो है ॥ १ ॥

३कोटि-कल्प लागि वसत, लसत पद-पकज छाँही ।

कामधेन पुनि कोटि-कोटि, मिलुठति रज-मोही ॥२॥\*

४सो पिय भए अनुकूल, तूल कोउ नाहिँ रदयो तय ।

५निरिधि-सुखन को मूल, मूल उनमूल किए सय ॥ ३ ॥

पाठान्तर—

(अ) १—सुनि पिय के रस वचन, सवन रिपि छाँड़ि दया है ।

(रा०) ,,—सुनि प्रिय के रस वचन, सवनि गसि झाँड़ि दण है ।

(अ) २—विहँसति अपने कठन, लाल लगाय लया इ ॥

(रा०) ,,—विहँसि आपने उर मा, लाल लगाइ लण है ॥

(अ) ३—कल्प कोटि लीं वसति, लसति पकज पद छाहीं ।

(रा०) ,,—कोटि कल्पतर लसत, वसन पद पकज छाहीं ।

(प) ,,—कोटि कल्पतर बसै, लसे पद पकज [काट ।

कोटि कोटि पुनि कामधनु, मिलुलित रज माँइ ॥

\* उक्त पद्य नागरी प्रचारिणी मभा वाली प्रति में नहीं है ।

(य) ४—भए पिया अनुकूल, तूल कोउ नाहिँ भयो अय ।

(रा०) ,,—सो पिय भए अनुकूल, तूल कोउ न भयो अय ।

(य) ५—निरिधि सुख को मूल, मूल निरमूल करे सय ॥

(रा०) ,,—निरिधि सुख के मूल, मूल उनमूल कर्यो सय ॥

(प) ,,—निरिधि सुख के मूल, मूल अनमूल किए तय ॥



१ फिरि आए तिहिँ सुर-तरु-तर, सुन्दर गिरिवर-धर ।  
आरभौ अद्भुत-सुरास, उहिँ कमल-चक्र पर ॥ ४ ॥

२ एक-काल ब्रज-वाल-लाल, तहँ चढे जोरि-कर ।

३ नैकु न इत-उत होत, सबै निरतति विचित्र-वर ॥ ५ ॥

४ मनु दरपन सम अवनि, रवनि तापै छवि दैई ।

५ विलुलित कु डल-अलरु, तिलरु भुकि भाई लैई ॥ ६ ॥\*

पाठान्तर—

(प) १—तव वा रातहि तेहि सुर तरु तर, सुन्दर गिरिधर ।

(च) ,,—आए पुनि तहँ सुन्दर तरु-धर, पिय गिरिधर धर ।

(रा०) ,,—फिरि आए तिहिँ सुरतरु तर मोहन गिरिवर—धर।  
आरम्भित अद्भुत सुरास, उहिँ कमल चक्रपर ॥

(रा०) २—एक बार ब्रजवाल लाल, सब चढे जोर-कर ।

(ऽ) ३—नमित न इत उत हौंइ, सबै निरतै विचित्र-वर ॥

(रा०) ,,—नव तन इन उत होत, सबे निरतत विचित्र वर ॥

(अ) ४—मनि, दरपन से अवनि, रवनि ता पर छवि दैहीं ।

(च) ,,—पुनि दरपन सम अरनी, रवनी अति छवि दैहीं ।

(रा०) ,,—मनि दर्पन सम अवनि, रमनि तापर छवि दैहीं ।  
विलुलै-कु डल, अलरु, तिलरु भुकि भाई लैई

(रा०) ५—विधुरित कुण्डल, अलरु, तिलरु भुकि भाई लैई ॥

\*उक्त पद (रु) (प) (ऽ) तीन प्रतियों में नहीं है ।

<sup>१</sup>कमल-करनिका मध्य, जु स्यामा-स्याम वर्नी छवि ।

<sup>२</sup>द्वै-द्वै गोपिन-वीच, यौ मौहन लाल रहे फवि ॥ ७ ॥

<sup>३</sup>मूरत एक अनेक देग्वि, सोभा अदभुत अस ।

<sup>४</sup>मजु-मुकुर-मडल मधि बहु-प्रतिविम होइ जस ॥ ८ ॥<sup>३३</sup>

रतनावलि-मधि नील-मनी, अदभुत झलकै जस ।

<sup>५</sup>सकल-तियन के सग, साँवरौ-पिय सोभित अस ॥ ९ ॥<sup>३४</sup>

पाठान्तर—

(ड) १—कमल—कणिका मध्य, स्याम स्यामाजु वर्नी छवि ।

(रा०) २—द्वै द्वै गोपियन विच पुनि मयडल माँहि लरे फवि ॥

(प०) ३—मूरति एक अनेक लगत, अदभुत—सोभा अस ।

(रा०) ४—अविमल दरपन मयडल माहिँ विधु अानि परत जम ॥

(प) „—मजु मुकुर मडल मधि, विधु छवि अानि परति जम ॥

३३ उक्त पद्य (क) प्रति में नहीं हैं ।

(अ) ५—सकल तियन के सग, साँवरी पिय सोभे अम ।

रतनावलि मधि नील मनी, झलकै अदभुत जम ॥

अथवा—

(रा०)—सकल तियन के मध्य सावरो पिय सोभित अस ॥

† कमल करनिका मध्य जु स्यामा स्याम वर्ना छवि" में लेकर उक्त छंद तक (क) प्रति में नहीं है जो कि उचित प्रतीत होता है क्योंकि इसमें कथाक का मिलसिद्धता तो विगड़ता ही है साथ ही पुनः शक्ति दोष भी भासित होता है और शब्दावली भी विचारणीय है । उक्त छंद हासिये पर किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा पीछे से लिखा मान्य होता है । हों छापे की सभी प्रतियों में (उक्त छंद) अथवा मौजूद हैं सिर्फ मधुरा की लेखों की छपी को छोड़कर, अतः लाचार होकर हमें भी इनको लिखना पड़ा ।

<sup>१</sup>चपल-तियन के पाछे, आछें विलुलित-बैनी ।

<sup>२</sup>चचल-रूप-लतनि-सँग डोलति ज्यो अलि-सैनी ॥ १५ ॥

मौहन-पिय की मलकन, ढलकन मोर-मुकट की ।

सदाँ वसोँ मन मेर, फरकन पियरे-पट की ॥ १६ ॥

<sup>३</sup>कमल-वदन पै अलक छुटोँ, कछु स्रम-कन अलकनि ।

सदाँ रहोँ मन मेरे, मोर-मुकट की ढलकनि ॥ १७ ॥

### पाठान्तर—

(थ) १—इयिलि तियन के आछें पाछें विलुलित-बैनी ।

चचल रूप लतानि सग डोललि अति सैनी ॥

(त) २—चचल रूप लतनि सँग, डोलत जनु अलि सैनी ॥

उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में उनमठ नवर पर है ।

(प) ३—वदन कमल पै छुरित अलक, स्रम कन कछु अलकनि ।

(रा०) „—कमल वदन पर अलकनि कहुँ पहुँ स्रम कन अलकनि ।

सदाँ वसोँ मन मेरे, मजु मुकट की लटकनि ॥

†उक्त पद्य (ह) प्रति में नहीं है और सद्य में मौजूद है पर “पुनिरक्ति” का यहाँ भी दोष वर्तमान है, जो कि हमारी समझ में नहीं आता । नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में उक्त पद प्रथम पद से आगे है ।

<sup>१</sup>कोऊ सखि कर-पकर, जु निरतति था छत्रि सो तिय ।  
मानौ करतल फिरति देखि, नट-लट्ट होत जिय ॥१८॥<sup>७</sup>

<sup>२</sup>कोऊ नाइक के भेद-भाव, लावन्य-रूप-स ।

<sup>३</sup>अभिनै करि दिखरावति अरु गावति पिय के जस ॥१९॥<sup>८</sup>

पाठान्तर—

(अ)—कोऊ सखी ! कर पकरत निरतत यों छत्रीली तिय ।

(ब) ,, —सखी ! कोऊ कर पकरें, निरतति था छत्रि सौं तिय ।

(ट) ,, —कोऊ कर पकरै निरतत, छत्रि सौं अति प्रिय तिय ।

करतल फिरत देखि मानौ नट लट्ट होत पिय ॥

(घ) ,, —कोऊ कर प अरुप तिरप निरतत छत्रीजी तिय ।

मानौ करतल फिरत देखि, अति लट्ट होत पिय ॥

(र०) ,, —कोऊ तहाँ कर प्रीति, गुन जस करन लगी तिय ।

मनु करतल लट्ट फिरत देखिकै लट्ट होत पिय ॥

(इ) ,, —कोऊ मखि ! कर पर तिरप बाधि निरतत नागर तिय ।

मानौ करन लट्ट फिरत, लखि लट्ट होत पिय ॥

७ उक्त पद नागरी प्राचारिणी वाली प्रति में तैतीम नवर पर है ।

(ट) ० —नाइक साँ करि भेद भाव, लावन्य-रूप सख ।

करि अभिनै दिखरावति, गावति गुन पिय के जस ॥

(श) ,, —कोऊ नायक के भेद भाव लावन्य, रूप सख ।

अभिनय करि दिखरावति गावति गुन पिय के जस ॥

(क) ३ —दिखरावति अभिनय करि, गुन गावति पिय के जस ॥

+ यहाँ से प्रथम, नागरी प्राचारिणी वाली प्रति में सप्त प्रनिया के समाप्त है ।

<sup>१</sup>तव नागर-नँदलाल, चाँहिँ कै चकित होत यौ ।

<sup>२</sup>निज-प्रतिविग्र-बिलास-निरखि,सिसु भूलि पग्त ज्यौ ॥२०॥

<sup>३</sup>रीभि परसपर वारित, अग्र, अभरन अँग के ।

<sup>४</sup>जहँ के तहँ बनि रहत, सकल अद्भुत-रँग-रँग के ॥२१॥

पाठान्तर—

(अ) १—नव नागर नँदलाल, चाँहिँ चित चकित होति यौ ।

निज प्रतिविग्र निरखि भूलै, अटपटो-सिसु ज्यौ ॥

(रा०) ,,—तव नागर नँदनद निपट हीँ, होत बियस अम ।

निज प्रतिविग्र बिलास, निरखि सिसु भूल रहत जस ॥

(प) २—निज प्रतिविग्र बिलासनि निरखैँ, सिसु भूलि रहति जौ ॥

(ब) ३—वारति रीभि परसपर, अग्र अँग अँग के ।

(ट) ,,—रीभि परसपर वारि देत, अग्र अँग अँग के ।

अग्र तहाँ बनि रहति सयैँ, अद्भुत रँग रँग के ॥

(रा०) ,,—रीभि परसपर वारत, अग्र भूपन अँग के ।

अँर तयहिँ बनि रहत,तहाँ अद्भुत रँग रँग के ॥

(ब) ४—छिन अँरे बनि रहति, अग्र गाना रँग के ॥

(प) ,,—अँर तिहिँ छिन बनि, तहाँ अद्भुत-रँग रँग के ॥

<sup>१</sup>कोउ मुगली-सुर-जुरलि, रँगोली रस हिँ बढावति ।  
कोउ मुरली कौ छेकि, छीली अद्भुत-गावति ॥२२॥\*

<sup>२</sup>ताहि साँवगे-छैरु, रीभि हँसि लेति भुजन-भरि ।  
<sup>३</sup>चु उन करि मुख-सदन, वदन ते दै तँबोल ढरि ॥२३॥ \*

पाटान्तर—

(प) १—कोउ मुरली सा जुरली, रसीली रस हिँ बढावति ।

(र०) ,,—कोउ मुरली सँग जुरली, अद्भुत रसहि बढावति ।

(च) ,,—कोउ मुरली-सुर लपें, रँगोली रँगहि बढावति ।

(य) ,,—कोउ मुरली रसबली, रसीली रसहि बढावति ।

(रा०) , —कोउ मुरली सँग रली (मिली) अली अति रसहि बढावन ।  
सुधर पिवा सँग गावति, सुदरि अति छवि पावन ॥

\* उक्त पद से आगे नागरी प्रचारिणी वाली प्रति म पुनः श्रद्धा  
में गठबद्ध है ।

(क) २—तथै साँवरो कुँवर, रीभि लै लेति भुजन भरि ।

(रा०) ,,—ताहि साँवरो कुँवर, रीभि, हँसि लेति भुजन भरि ।

(क) ३—करि सुजन मुख सदन, वदन तँ दति मोल ढरि ॥

† उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में दो पद के अन्तर  
अर्थात् गम्यर चालीस पर है ।

- १ जग में जे संगीत-रीति, सुर-नर रीभक्ति जिहि ।  
 २ सो ब्रज-तिय के सहज-गान, आगम गावत तिहि ॥२४॥
- ३ राग-रागिनो-मम जिनकौ, बोलिवो सुहायौ ।  
 सो किन पै कहि आवै, जो ब्रज-देविन गायौ ॥२५॥ \*
- ४ जो ब्रज-देवी निरतति, मडल-रास महा-छवि ।  
 ५ सो रस कैसे बरनि सकै, ऐसो है को कवि ॥२६॥ \*

---

पाठान्तर—

- (अ) १—जे जग में संगीत-गीत, सुर मुनि रीभै जिहि ।  
 (प) ,,—जे जग हैं, संगीत, निरत, सुर, नर रीभनु जिहि ।  
 ब्रज तिय के सो सहज, आगम गावत आगम तिहि ॥
- (स) २—सो ब्रज तियनि के सहज गमन, गावत आगम तिहि ॥  
 (रा०) ,,—जग में जो सङ्गीत रीत, सुर मुनि रीभत जिहि ।  
 सो ब्रज तियन को सहज, गवन अद्भुत गावत तिहि ॥
- (च) ३—राग रागिनी सौ, जिन को बोलिवो सुहायौ ।  
 फापै सो कहि आवे, ब्रज देविनि जो गायौ ॥  
 (रा०) ,,—राग रागिनी समुझन कौ, बोलिवो सुहायौ ।  
 सो कैसे कहि आवै, जो ब्रज देविन गायौ ॥
- \* उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में तैतालीस नंबर पर है ।
- (च) ४—ब्रज देवी घर निरतत, मडल करि जु महा-छवि ।  
 सो रस कैसे बरनि सकै, जग ऐसो को कवि ॥  
 (रा०) ५—सो रस कैसे बरनि सकै, इहँ ऐसो को कवि ॥
- † उक्त पद (क) (प) दो प्रतियों में नहीं है और छापे की प्रतियों में उक्त पद, पूर्व पद के आगे है ।

१ ग्रीव ग्रीव भुज मेलि, केलि-कमनीय उदी-अति ।

२ लटक-लटक मुरि-निरतति, कापै कहि आवति गति ॥२७॥

३ छपि सों निरतनि, लटकनि, मटकनि मडल-डोलनि ।

कोटि-अमृत-सम मुसिकनि, मजुल ता-थेई-बोलनि ॥२८॥

४ कोउ गावत सुग-लै-सौ, लै करि तान नई-नई ।

सन-सगीतन छेकि, सु-सुन्दरि गान करत भई ॥२९॥\*

पाठान्तर—

(द) १—पिय-ग्रीवा कर मेलि, केलि कमनीय यदी अति ।

निरतन लटक लटक कै, कापै कहि आवै गति ॥

(रा०) २—लटक लटक नितति पिय सों, मनमथ मन्यन गति ॥

(अ) ३—निरतन छपि सों लटकत मटकत मडल डोलन ।

कोटि अमृत मुसकन मजुल, ता थेई थेई बोलत ॥

(रा०) , —कवट्टे परस्पर नितति लटकनि मण्डल डोलनि ।

कोटि अमृत सम मुसकनि मजुल सन थेई बोलनि ॥

(प) ४—कोउ उत ते अति गावति, सुर लय तान नई नई ।

(य) ,, —कोउ उद्यत उत गावति, सुलक वै तान नई नई ॥

सगीतनु सब छेके सुन्दरि गान करनि भई ॥

(रा०) ,, —कोउ तिनहुँ तैं अधिअ अमिषित, सुर जुन गति नई ।

सब केँ छकि दृगीजी, अमृत गान करत भई ॥

(ह) ,, —कोउ बनतैं अति गावत, सुर लय लेत तान नई ।

सब सहीत धरै, जु सुन्दरी गान करत भई ॥

\*उक्त पद नागरी प्रचारिणा वाला प्रति में नम्यर अक्षतास पर ह ।



<sup>१</sup>अप-अपनी गति-भेद, सबै निरतनि लागी जव ।

<sup>२</sup>मोहे गँधरव ता-छिन, सुन्दरि-गान कियौ तत्र ॥३०॥\*

<sup>३</sup>भुज-दडन सौ मिली मडली निरतति अति-छवि ।

<sup>४</sup>कु डल कच सौ उरभे, सुरभे, तहँ बड़रे-कवि ॥३१॥†

पाठान्तर—

(अ) १—अपनी निज गति भेदन सौ निरतन लागी तत्र ।

(रा०) ,,—अपन अपनी जत गती भेद नर्तन लागनि जत्र ।

(ह) ,,—अप, अपनी जाति भेद तहँ नृर्तन लागी सय ।

(,) २—गँधरव मोहे ततछिनु, सय मिलि गान कियौ जव ॥

(फ) ,,—तिहि छिनु मोहँ गँधरव, सुन्दर-गान करत जव ॥

(रा०) ,,—अलि गँधर्व नृप से सय सुन्दर गान करत तत्र ॥

(ह) ,,—गधरव मोहे ता छिन, सुन्दरि गान करत जव ॥

\* उक्त पद नागरि प्रचारिणी वाली प्रतिमें नम्बर सत्ताइस पर है ।

(अ) ३—भुज दडन सौ मिलति ललित मडल निरतति-छवि ।

(रा०) ,,—गण्डन सौ मिलि ललित गण्ड मण्डल मण्डित छवि ।

(ह) ,,—भुज दण्डनि सौ मिलति ललित मण्डल निरतत छवि ।

(ब) ४—कच कु डल सौ उरभे, सुरभे तहिँ बड़रे कवि ॥

(म) ,,—कुण्डल सौ कच उरभे सुरभे जहँ बड़रे कवि ॥

(य) ,,—कुण्डल कचसौ उरभि सुरभि नहिँ धरनि सकै कवि ॥

† उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति नम्बर पैंतालीस पर है ।

<sup>१</sup>पियहि मुग्ध की लटकनि, मटकनि, मुरली-रव अस ।

<sup>२</sup>कुहुँकु-कुहुँकु जनु नाँचत, मजुल-मोर भरे-रस ॥३२॥\*

<sup>३</sup>सिर तै सुमन सु-देस, जु परसत अति-आनंद-भरि ।

<sup>४</sup>जनु पद-गति पै रीझि, अलक, पूँजति फूलन करि ॥३३॥†

पाठान्तर—

(प) १—पिया मुग्ध की मटकनि लटकनि, मुरली रव अस ।

(ट) „—पिय के मुग्ध की लटकनि मुरली नाँचि भरी अस ।

(रा०) „—पिय के मुग्ध की लटकनि मटकनि मुरली रव अस ।

(ट) २—नाँचति कुहुँकु-कुहुँकु ज्यों मजुल मोर सोर जस ॥

(॥) „—कुहुँकु कुहुँकु मनों (पै) नाचत मजुल मोर भर्यो रस ॥

(ह) „—कुहुँकु कुहुँकु पै परसति मजुल मोर भर्यो अस ॥

\*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रतिमें नम्बर छत्तीस पर है ।

(अ) ३—सोसहिँ कुसुमन बरखत, सु-दर आनँद अति करि ।

मनु पद गति पर रीझि, अलक पूँजै फूलन भरि ॥

(रा०) „—मितनेँ कुसुम जु सु-दर परसत अति आनँद भरि ।

(ह) „—सोँचत सुमन सुवेसन बरसत अति आनँद भरि ।

(॥) ४—जनु पद गति पर रीझि, अलक पूँजति फूलन करि ॥

†उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर सत्तीस पर है ।

१स्रम-जल सुन्दर-विन्दु, रग-भरि अति-छवि-धरसत ।

२प्रेम-भक्ति-विरवा जिनके, तिन के हिय-सरसत ॥३४॥\*

३वृन्दावन कौ त्रिविधि-पवन, विजना जु विलोलै ।

४जहँ-जहँ श्रमित विलोकै, तहँ-तहँ रस-भरि डोलै ॥३५॥†

---

पाठान्तर—

(क) १—सुन्दर स्रम जल-विन्दु भरे रँग अति छवि धरसत ।  
जिनके प्रिवा प्रेम भक्ति, उनके उर सरसत ॥

(रा०) ,,—श्रम भरि सुन्दर पुन्द रङ्ग भरि, कहुँ कहुँ धरसत ।  
प्रेम भजत जिनके जिय तिनके हिय अति सरसत ॥

(ह) ,,—स्रम जल विन्दुक सुन्दर रग भरि कहु कहु धरसत ।  
प्रेम भक्ति विरला जिनके तिनके हिय अति सरसत ॥

\*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नधर पच्चीस पर है ।

(क) ३—श्री वृन्दावन पवन त्रिविधि, विजना जु बितोलत ।  
जहँ जहँ श्रमित विलोकत, तहँ-तहँ रस भरि डोलत ॥

(रा०) ,,—वृन्दावन कौ त्रिगुण पान, सो (सुख) विजा विलोलै ।  
जहँ-जहँ श्रमित विलोकै, तहँ तहँ रँग (रस) भर्यो डोलै ॥

†उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर अठारह पर है ।

- १ उडत अरुन-अति वसन, सु-मडल मडित ऐसै ।  
 २ मनो सघन-अनुराग-घटा-घन-धुँ मडत जैसे ॥३६॥\*  
 ३ ता-धूरि के मध्य, मत्त-अलि भरमत ऐसै ।  
 ४ प्रेम-जाल के गोलक, कछु-छवि उपजत जैसे ॥३७॥  
 ५ कुसुम-धूरि-धूँ धरी कुज, मधुकरनि-पुंज जहँ ।  
 ६ हुलसत रस-आवेस, लटकि कीन्हो प्रवेस तहँ ॥३८॥ †

पाठान्तर—

- (२०) १—अरुन उडत तन वसन, सु मडित मडल पसै ।  
 (२०) ,,—उडै अरुन पट बास राम मण्डल मण्डत अस ।  
 (ह) ,,—उडगन अरुन अधीरन अहुत मसि मण्डल पेसी ।  
 (क) २—मघन घटा अनुराग मनो, घुमइत घन जैसे ॥  
 (छ) ,,—मनो सघन अनुराग घटा उमइत घुमइत रस ॥  
 (२०) ,,—मनहुँ मघन अनुराग घटा घन घुमइत जैसे ॥  
 \*उक्त पद नागरी प्रचारणी वाली प्रति में नम्बर तेइस पर है ।  
 (ट) ३—ताकी धूँ धरि मत्त, मधुप वर भरमत शु ऐसे ।  
 (२०) ,,—ताकी धूँ धरि मत मधुप वन भरमत शु ऐसे ।  
 (,) ४—प्रेम जाल के गोल कछुक छवि उपजत जैसे ॥  
 (अ) ५—कुसुम धूँ धरी कुज, मत्त मधुकरन पुज जहँ ।  
 (च) ,,—कुसुम धूँ धरि कुज, मत्त मधुकर निवेस जहँ ।  
 (२०) ,,—कुसुम धूरि धूँ धरे-कुज, मधुकरन पुज जहँ ।  
 है करि रस आवेस लटकि कीन्हो प्रवेस तहँ ॥  
 (प) ६—ऐसे हुलसत प्रीवन प्रीवन, लटकि वेस तहँ ॥  
 (फ) ,,—ऐसे हुलमे आवत प्रीवन लटकि केस जहँ ॥  
 (भ) ,,—ऐसे ही रस अलस लटकि कीन्हो प्रवेस तहँ ॥  
 †उक्त पद नागरी प्रचारणी वाली प्रति में नंबर उनतालीस पर है ।

१ नव-पल्लव की सैनी, अति-सुगम-दैनी सरसै ।

२ सुन्दर-सुमन-सु निरखे, अति-आनन्द हिय बरसै ॥३९॥

३ विहरति रति-अविरुद्ध-जुद्ध, सुगते रस—सागर ।

४ उज्जल-प्रेम-उजागर, नागर सप्त-गुण-आगर ॥४०॥\*

हार. हार में उरझि, उरझि बँहियाँ में बँहियाँ ।

नोल-पीत-पट उरझि, उरझि वेसर-नथ-मँहियाँ ॥४१॥†

समिति सु-सुन्दर-अंग-सरस-अति चलत ललित-गति ।

असन पै भुज दए, लटक-सोभा सोभित-अति ॥४२॥

पठान्तर—

(क) १—नव पल्लव दल सैनी, सुख-दैनी अति दरसै ।

सुन्दर-सुमननि बरसत, लखि आनन्द हिय बरसै ॥

(ह) ,,—नव पल्लव की सैनी अति सुख दैनी तिहिँ तर, (सिरसै) ।

(,) २—निरखेँ सुन्दर सुमन, सु आनन्द हिय बरसै ॥

(भ) ,,—तापर सुमन उसेसी, मधुर निरेसी तिहि पर ॥

(रा०) ३—बिहसति अति रति जुद्ध, रुद्ध सौँ रत-रस-सागर ।

(ह) ,,—बिहँवति रति अति जुद्ध, रुद्ध सौँ रत रस सागर ।

(रा०) ४—उज्जल प्रेम उजागर, सब गुण आगर-नागर ॥

\*उक्त पद नागरी प्रचारणी वाली प्रति में नम्बर बावन पर है ।

(अ) ५—सम भरे सुन्दर अंग, सरस अतिमिलत ललित-गति ।

(य) ,,—सम भरे सुन्दर अंग परसि, अति मिलत-ललित गति ।

(रा०),,—सम भरि सुन्दर अंग, रास रस-ललित-वलित गति ।

असन पर भुजवर दीनेँ सोभित सोभा अति ॥

† उक्त पद नागरी प्रचारणी वाली प्रति में नम्बर सत्तावन पर है ।

१ दृष्टि जु मुक्ता-माल, छटि रही सुन्दर उर पर ।

गिरि तै जिमि सुरसरी, गिरी द्वै-धार गरि-धर ॥४३॥\*

२ अद्भुत-रम रद्यौ रास, गीति-पुनि सुनि मोहे मुनि ।

४ सिला सलिल द्वै गई, सलिल द्वै गयौ सिला पुनि ॥४४॥†

पवन-थक्यौ, ससि-थक्यौ, थक्यौ उडु-मडल सगरौ ।

५ पाछै रवि-रव थक्यौ, चल्यौ नहिँ आगै डगरौ ॥४५॥‡

पाठान्तर—

(अ) १—दृष्टी मुक्ता माल, दृष्टि रही प्यारे उर पर ।

(ब) ,,—दृष्टी मुक्ता माल, रही छुटि साँवल उर पर ।

(ह) ,,—दृष्टि मुक्ता की माल, छटि रहि साँवर उर पर ।

मानौ गिरितै गिरी, सुरसरी धार दुविधि धर ॥

(क) २—मानौ गिरि तर घँसी, सुरसरी धार द्वै विधि धर ॥

(फ) ,,—जनु सिद्धार पहार त सुरसरि धाइ घँसी धर ॥

(स) ,,—मनु गिरि तँ सुरसरी, जु द्वै विधि गिरी धाइ धर ॥

\* उक्त पद नागरी प्रचारणी वाली प्रति में नग्यर साठ पर है ।

(प) ३—अद्भुत रस रद्यौ फैलि, गीति पुनि सुनि मुनि मोहै ।

(२) ४—सिला सलिल द्वै रद्यौ, सलिल द्वै मिला जु सोहै ॥

(य) ,,—सलिल मिला द्वै चली, सलिल द्वै रद्यौ सिला पुनि ॥

† उक्त पद नागरी प्रचारणी वाली प्रति में नग्यर अन्तालीस पर है ।

(क) ५—ध्यान थक्यौ, सुध थक्यौ, चला नहिँ पावै डगरौ ॥

‡ उक्त पद नागरी प्रचारणी वाली प्रति में नग्यर सोलह पर है ।

- १ मंजुल-अजुल भरि-भरि, पिय पै तिय जल मेलति ।  
 २ जनु अलि सौ अरविद-वृन्द, मकरदन-खेलति ॥५२॥\*
- ३ छिरकत छैल-छवीले, मंजुल-अजुल भरि-भरि ।  
 ४ अरुन-कमल-मडली, फागु खेलति जनु रँग-करि ॥५३॥†
- ५ रुचिर-दृग चल-चंचल, अंचल मैं झलकत अस ।  
 ६ सरस-कनक के कजन, खजन जाल परे जस ॥५४॥

पाठान्तर—

- (ट) १—भरि-भरि मजुल-अजुल पिय कौं तिय जल मेलत ।  
 (य) ,,—भरि भरि पिय पै अजुल मजुल तिय जल मेलें ।  
 (रा०),,—मजुल अजुल भरि-भरि पियकौं तिय जल मेलत ।  
 (॥) २—मानौं अलिकुल-वृन्द, सहज मकरदहि खेलत ॥  
 (द) ,,—मानौं अलिकुल सहजै-बस मकरदहि खेलें ॥  
 (ध) ,,—जानौं अति अरविन्द वृन्द मकरन्दहि खेलत ॥
- \* उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में पूर्व पद से आगे हैं ।  
 (ट) ३—छिरकत करि-छल छैल, जमुन-जल अंजुलि भरि-भरि ।  
 (प) ,,—छिरकत जल ले छैल छवीली अजुल भरि-भरि ।  
 (रा०),,—करहुँ परस्पर छिरकत मजुल अंजुल भरि-भरि ।  
 (प) ४—अरुन कमल मंडली फागु खेलै रस-रँग करि ॥  
 (रा०),,—अरुन कमल मण्डली फाग खेलत रस (जानौं) रँग अरि ॥
- \* उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रतिमें नंबर उनसठ पर है ।  
 (क) ५—चलत दृगचल, चंचल, अंचल मैं झलकै यौं ।  
 (प) ,,—रुचिर-दृगचल चंचल, वर जगमग जगमग अस ।  
 (क) ६—सरस-कनक के कजन, खजन जाल परे ज्यौं ॥  
 (प) ,,—परे कनक के जाल, सु खजन तरफरात जस ॥

- १ जमुना-जल में दुरि-मुरि, कामिनि करति किलोलै ।  
२ मनु नव-घन के मध्य, दामिनी दमकति डोलै ॥५५॥
- ३ कमलन तजि-तजि अलि-गन, मुख-कमलन आवत जब ।  
४ छविहिँ छबीली-वाल, छपति जल में दवकति तय ॥५६॥
- ५ कनहूँ मिलि सब बाल, लाल-छिरकति है छवि अस ।  
६ मनसिज पायौ राज, आज अभिपेक होति-जस ॥५७॥\*

पाठान्तर—

- (क) १—श्री जमुना जल दुरि दुरि कामिनि करत किलोलै ।  
(रा०),,—जल जमुना में दुरि मुरि करत कामिनि जु किलोलै ।
- (छ) २—नव घन के अनु भीतर दामिनि दमकति डोलै ॥  
(प) ,,—नव घन भीतर अनु दामिनि, अति दमकति डोलै ॥  
(रा०) ,,—अनु घन भीतर भीतर ससिगन तारे तरि डोलै ॥  
(ह) ,,—मानौ तव घन मध्य दामिनी दामिनि डोलै ॥
- (श) ३—कमलन तजि कै अलिगन, मुख-कमलन दिग आवत ।  
(रा०),,—अलिगन कमलनि तजि मुख-कमलनि पर आवत ।  
(प) ४—छवि सौँ छबीली छैल भै टि तत छिनहिँ उदावत ॥  
(भ) ,,—छपत छबीली-वाल, हाल जल में जु दुरावत ॥  
(रा०) ,,—छवि सौँ छबोले छैल भै टि तेहि छिनहिँ उदावत ॥
- (श) ५—कनहूँक सब मिलि बाल, लाल जल छिरकत छवि अस ।  
(स) ६—पायौ मनसिजराज, राज अभिपेक होत जस ॥



१तिनकी सुन्दर-काति-भाँति मनमोहन भावै ।  
वाल-वैस की छवि, कपि पे कछु कहति न आवै ॥५८॥

२भाजि बसन तन-असन, निपट-छवि अकित है अस ।  
३नैननि कै नहिँ वैन, वैन कै नैन नाहिँ जस ॥५९॥

४नीर-निचोरति जुगतिननि देखि अधीर भए मनु ।  
५तन-बिछुरनि की पीर, चीर रोवति अँसुवन जनु ॥६०॥

पाठान्तर—

(रा०) १—निकसी सुन्दरि भाँति कान्ति मन ही मन भावै ।

(ग) २—वाल-वैस छवि जैसे कपि पे कही न आवै ॥

(ह) ,,—वाल वैस छवि कपि पेँ कबहुँ कहत न आवै ॥

(अ) ३—बसन भाँजि तन-लिपटि, निपट छवि अकित है अस ।

(ग) ,,—भाँजे-बसतन लिपटनि की छवि अकित भई अस ।

(च) ,,—भाँजे बसन तन लपटन अदमुत छवि का कहि है ।

(रा०) ,,—भाँजि बसन तन लपटि निपट ही अदमुत छवि सय ।

(म) ४—नैनन कौं नहिँ वैन, वैन कौं नैननि नहिँ है ॥

(रा०) ,,—नननि के नहिँ वैन, वैन के नहिँन नैन तय ॥

(रा०) ५—रुचिर निचोरनि चुवति नीर लखि भये अधीर तनु ॥

(घ) ६—तन बिछुरन की पीर, चीर (धीर) अँसुवन रोवत जनु ॥

- १निरखि परमपर छपि सो, विहरति प्रेम-मदन-भरि ।  
२प्रकृति-वाम की छाती, अजहँ धरकति धरि-धरि ॥६१॥  
३तय इक द्रुम-तन चितै, कुँवर-पर आग्या दीनी ।  
४निरमल-अवर, भूपन, तिन तहँ परखा-कीनी ॥६२॥  
५अपनी-अपनी रुचि के, पहिरे-यसन वनी छय ।  
६जगत-माहिनी जिती, तिती ब्रज-तिय मोहनि सव ॥६३॥

पाठान्तर—

- (रा०) १—कवु परस्पर छपिमां भाखन, प्रेम मदन भरि ।  
(अ) २—प्रकृति वाम की छाती अजहँ परत तिनके डरि ॥  
(इ) „—प्राकृत काम छाति अजहँ धरकत जाके डरि ॥  
\*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नवर इत्यादि पर हैं ।  
(रा०) ३—तय इक द्रुम तन चितै कुँवर अस अना दीनी ।  
(स) ४—निरमलक अवर, भूपन, निहँ परपा कीनी ॥  
(प) ५—रुचि अपनी अपनी के पहरे यसन असन छय ।  
(रा०) „—अप अपनी रुचि के पहिरे छपि परत न घरनी ।  
(र) ६—जगत माहिनी जे तिनकी ब्रज तिय मोहनि सव ॥  
(च) „—जग में जे मोहन ई तिन का ब्रज माहिनि सव ॥  
(रा०) „—जग मोहिनी चितै तिन की मोहिनि ब्रज घरनी ॥  
(ह) „—जग में ए मोह आत तिन की ब्रज तिय मोहिनी सव ॥

- १सरस-सरद की जोति, मनोहर जगमग-राती ।  
 २खेलत रास रसिक-र, प्रति-छिन नई-नई-भाँती ॥६४॥  
 ३ब्रह्म-मुहूरत कुँवर-फान्ह-र घर आए जब ।  
 ४गोपन अपनी गोपी, अपने-ढिँग जानी तब ॥६५॥\*

## फलस्तुति वर्णन

- १नित्त रास-रस-मत्त, नित्त गोपी-जन-वल्लभ ।  
 २नित्त निगम जो कहत, नित्त नव-तन अति-दुल्लभ ॥६६॥

### पाठान्तर—

- (अ) १—यहै सरद की जिति मनोहर जगमग-राती ।  
 (ट) „—येसैं ही जेतिक परम मनोहर सरद हि राती ।  
 (रा०) „—येसैं ही जोति सरद की परम मनोहर रातैं ।  
 (ढ) २—खेलत रास रसिक पिय, दिन दिन नई नई भाँती ॥  
 (रा०) „—क्रीडत हैं पिय रसिक सु दिन दिन अन अन भाँतैं ॥  
 (फ) ३—ब्राह्म मुहूरत फाँह कुँवर घर आए गृह जब ।  
 (रा०) „—ब्रह्ममुहूरति कुँवरि फान्ह, निज (सब) घर आए तब ।  
 (म) „—गोपन अपनी गोपी, अपने ढिँग मानी तब ॥  
 (रा०) „—गोपनि अपनी गोपी, अपने ढिँग पाई सब ॥

\*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में पूर्व पदों से आगे है ।

- (क) १—नित्य रास रस मत्तै, नित्त गोपी जन वल्लभ ।  
 (ग) „—नित्य निगम जो कहियतु, नित्त नौतन तन दुरलभ ॥

<sup>१</sup> यह अद्भुत-रस-गस, कहत कछु कहि नहिँ आवै ।  
सेस सहस-मुग्ध गावै, अजहँ पार न पावै ॥६७॥ \*

<sup>२</sup> सिय मन-ही-मन ध्यावै, काहू नाहिँ जनावै ।

<sup>३</sup> सनक, सनन्दन, नारद, साग्द, अति-मन-भावै ॥६८॥

<sup>४</sup> जयपि हरि-पद-कमल, जु कमला सेवति निस-दिन ।

तयपि यह रस सपने, कवहँ नहिँ पायौ तिन ॥६९॥

पाठान्तर—

(र) १—इहि अद्भुत सुख रास, महा-छुपि कहत न आवै ।

(प) ,,—अद्भुत यह रम-रासि, महा छुपि कहत न आवत ।

सेस सहस मुग्ध गावत, तौहू अत न पावत ॥

\* “मञ्जुलि श्रुजुल भरि भरी पिय पै तिय जल मेलत” से लेकर उक्त पद्य तक को पदावली (क) (प) प्रतियों में नहीं है । और नागरी प्रचारणी वाली प्रति म उक्त पद कुछ पाठ भेद के साथ नम्बर चालीस पर दिया है । यथा —

अद्भुत रस रयो रास कहत कछु नहिँ कहि आवै ।

ज्यौ मूँके रम के घसको मन ही मन भावै ॥

(क) २—सिय मुनि नित ही ध्यावै, कछु कहि न जनावै ।

(प) ,,—सिय अजहँ मन ध्यावै, काहू नाहिँ जनावै ।

(प) ३—मनक सनदन, नारद, साग्द अति हिय-भावे ॥

(रा०) ४—जदपि रमा रमनी कमला, पद सेवत निस दिन ।

यह मुख अपने सपने, कवहँ नहिँ देख्यो तिन ॥

१ जदपि सप्त-निधि भेदिनि जमुना निगम-प्रखानैं ।

२ ते तिहि धारहिँ धार रमत, जल छुवत न आनैं ॥७८॥

३ रसकि जनन केस ग रहै, हरि-लीला गावै ।

४ परम-कान्त, एकान्त प्रेम-रस तव हो पावै ॥७९॥\*

५ इहि उज्जल-रस-माल, कोटिं जतनन करि पोइ ।

६ सावधान है पहिरौ, वरु तोरौ मति कोई ॥८०॥

७ स्रवन, कीरतन, ध्यान-सार, सुमिरिन कौ है पुनि ।

८ ध्यान-सार, हरि-ध्यान-सार, स्तुति-सार, गुही गुनि ॥८१॥

पाठान्तर—

(रा०) १—जदपि सप्त निधि भेदक जमुना निगम बखानहिँ ।

(य) २—सो तिहि धारहि धारि रमत जल छुवै न आनैं ॥ ।

(रा०) ३—ते तिहि धारहि धार रमत छुमत न जल आनहिँ ॥

(रा०) ४—हरि दासन को सग करै हरि लीला गाव ।

(स) ५—परम कान्ति एकान्त भगति रम तौ (सोइ) मल पावै ॥

\*उक्त पद्य (अ) (च) (ट) (य) प्रतियों में नहीं हैं ।

(स) ५—उज्जल रस मनि माला कोटि जतन कौ पोई ।

(ह) ६—सावधान हेरौ फेरौ, तोरौ जिनि कोई ॥

(अ) ७—स्रवन कीरतन सार, सार सुमरन कौ है पुनि ।

(ट) ८—उन करि पुनि तन-सार, सार सुमरन कौ पुनि पुनि ।

(रा०) ९—ध्यान सार, कीर्तन को सार सुमिरन कौ सार पुनि ।

(च) १०—ध्यान सार औ ध्यान-सार, सब सार यहै गुनि ॥

(प) ११—सब सारन कौ सार ध्यान हरि जानि गुधी गुनि ॥

(रा०) १२—ज्ञानसार, विज्ञानसार, सतसार गहति गुनि ॥

# परिशिष्ट-पदावली

— ० —

राग-भैरव

हा हा हो हरि ! नृत्य करौ ।

जेमैं करि में तुमहि रिभाऊँ, त्यौं मेरौ-मन तुमहुँ हरौ ॥  
तुम जैसे नम-याहु करत हौ, तैसेई मैं हूँ डुलाऊँ ।  
मैं नम-देसि तिहारै उर कौ, भुज-भरि-रूठ-लगाऊँ ॥  
मैं हारी, त्यौंही तुम हारौ तब, चरन चाँपि नम-भैटौ ।  
'भूर' स्वाम ज्यौं उरग लेहु मोहि, त्यौंहीं हँमि म भैटौ ॥

❀

मान लाग्यौ, गिरघर गावै ।

तत-थेई, तन-थेई, तततत-ता-थेई, भैरौ-राग मिलि-मुरली-बजावै ॥  
नाचत नव-वृषभानु दुलारी, श्रवण-नाति मैं गति उपजावै ।  
गिरघर-पिय-प्यारी की पद-रज, "कृष्णदास" लै सीस चढावै ॥

❀

मदन-मोहन कमल-नेन, निरतति-राम-रगे ।

तत-थेडे, तत-थेई, थेई, थेई, गति अनेक लैति—

मान, मान करत रूप महज मरस सुधंगे ॥

कान-कुडल झलमलात, पीत-वसन फरफरात,  
 रनन, मुन्न धरति चरन, भृकुटी-भाव भगे ॥  
 मोही सुर ललना, भामिनि सिद्ध सकल सुनति नवन,  
 मुरली-नाँद, ग्राम, जति, अधर कल-उपगे ।  
 “गोविंद” प्रभु ललितादिक-सहचरी मिल जूथ सकल,  
 वारि-फेरि देति मदन कोटि-मोटि अगे ॥



प्यारी-प्रीवा-भुज-भेल, निरतत पिया-सुजान ।  
 मुदित परमपर लेति गति मै गति,  
 गुन-रासि राधे, गिरिधरन गुन-निधान ॥  
 सरस-मुरली धुनि मिलै, मधुर-सुर—  
 रास रंग भीने, गावै अवधर तान, वंधान ।  
 ‘चतुरभुज’ प्रभु स्यामा स्याम की नटनि देति  
 मोहे रग, मृग,वन थकित व्यौम-यान ॥



निरतति गुपाल सग, गोपिका मिली ।  
 अद्भुत-नट-भेष देति, कोटि काम अति विसेरि,  
 मुरली अधर-मधुर धरै सप्त-सुर-रली ॥  
 गावति पिक कठ सरस, परम रीफि तान वॉन,  
 भामिनी-सुजान वृषभानु की लली ।  
 बलय, नूपुर, किंकनी कटि-भलकत, तत थेई-थेई—  
 उघटत, मुख-सजदावलि, ग्रीव भुज पिली ॥  
 बाजत मधुरै मृदग, ताधिलाग गति सुधग,  
 सग लेति देति ताल, रास—मडली ।

नेलाहल करत हम, मोर सोर चट्टे थोर,  
 भोग भोगे फली मनो कंज की फली ॥  
 वृन्दावन-नव निकुञ्ज, प्रेम पज भरे हरि—  
 निरग्न तरनि तरनि तनया-तोर चावनी भली ।  
 वल्लभ चरनारविद पञ्ज मकर-सरस  
 करत दौन "मादास" मौहन अति अली ॥

❀  
 नाचति वृषभानु-सुँवरि, हंस-सुता पुलिन मध्य,  
 हस हसनी मयूर मडली रनी ।  
 नाचत गुपाल लाल, मिलतत भूप ताल चाल,  
 गुजत अति मत्त-मधुप कामिनी अनी ॥  
 पदक-लाल, कठ माल तरनि तिलक भल्लक भाल,  
 अरवि फलि, घर दुकूल, नासिका मनी ।  
 नील कचुकी सुद्रेस, चप-कली गलित केस,  
 मुगलित मनि मन-ग्राम, कटि सु कावनी ॥  
 मरकत-मनि-वलय-राज, मुखुर नूपुर धुनि सुभाज,  
 जात्रक-जुत चरनन-नख चद्रिका धनी ।  
 मंद हाम, भ्रू पिलाम, रास, लास, सुग्न निजाम,  
 अलग लाग लेति निपुन राधिना-गुनी ॥  
 काम सिधु, कतव त्रिदु, रीक्ति रद्दे, चरन गहे,  
 साधु-साधु कहत फिरत राधिका धनी ।  
 भँदति गहि वाह मूल, उरज परसि भडे फूल,  
 "न्याम" वचन सानुकूल, रसिक-जीवनी ॥

❀  
 सुधरा नाचति नवल किमोरी ।

थेई-थेई करति, चँहति पीतम दिसि, चदन चद मनो तृपित चयोरी ।  
 तान, पँधान, मान मैं भामिनि, रिफए स्याम कहत हो—हो री ।  
 "हित हरिप्रस" परसपर पीतम, वरजट लयौ मौहन चित चोरो ॥



अद्भुत नट-भेव धरै नॉचत गिरिधरन लाल,  
 उघटत सगीत तत-येई थेई-थेई ताथे ।  
 लेत उरप मान लाग-डाट सुधर-तान, आन आन-  
 गुन-गान नन नन-नन-गति वॅधान साथे ॥  
 सरद निसा पूरनचद, त्रिविध वायु वहति मद,  
 रग, मृग, द्रुम, बेली, पत्र, पत्र रटत राधे ।  
 जुवती म डल समूह, राग रग कौतूहल,  
 “राम-कृष्ण हित दमोदर” चरन अज अराधे ॥

### राग—रामकली

देखौ देखौरी । नागर-नट, निरतत कालिन्दी तट,  
 गोपिन के मध्य राजै मुकट लटरु ।  
 काछिनी, किकनी कटि, पीतावर की चटक,  
 कु डलन किरन-रवि-रथ की अटक ॥  
 तत थेई, तत येई सबद, सकल घट उरप—  
 तिरप-गति पग की पटक ।  
 रास में श्री राधे । राधे ॥ मुरली में एक रट,  
 “नददास” गावै तहाँ निपट निकट ॥

❀

निरतत स्याम, स्यामा-हेत ।

मुकट-लटकनि भृकुट मटकनि, नारि-मन-सुरग देत ॥  
 कबहुँ चलत सुध ग-गति लै, कबहुँ उघटत बैन ।  
 लोल कुडल, गंड-मडित, चपल नैननि सैन ॥  
 स्याम की छवि निरखि नागरि, रही इकटक-जोड ।  
 “सूर” प्रभु उर लाइ लीनी, प्रेम-गुन-करि-पोइ ॥

## राग—त्रिलावलि

चलहु राधिके सुनान ! तेरे हित गुन नियान,  
 राम रच्यौ कुँवर कान्ह, तट फलिन्द-नदनी ।  
 निरतति जुगती-समूह, राम-रंग अति कुतूह,  
 वाजति रस मुरलिमा, अति अनदनी ॥  
 प्रंसीपट निक्ट जहाँ, परम-रमन भूमि तहाँ,  
 सङ्गल-सुरगद बहति मलय वायु-मदनी ।  
 जाती ईसर त्रिकास, कानन अति-मै सुवास,  
 राका निसि-सरद-भास, त्रिमल चदनी ॥  
 “कृभन दास” प्रभु निहारि, लोचन भरि धोप-नारि,  
 नर सिर सौन्दर्य सीम, दुख निकदनी ॥\*



निरतति राधा नद किसोर ।

ताल, मृदंग सहचरी वजावति, त्रिच-विच मुरली कौ कल घोर ॥  
 डरप, तिरप पग धरत धरनि पै, मडल फिरत भुजन-भुज-जोर ।  
 मोभा अमित त्रिलोकि “गन्धर” रीकि-रीकि डारत वृन तोर ॥

## राग—टोड़ी

सुनौं हो स्याम ! इक बात नई ।

आज रास राधा अविलोक्यौ, मेरे-मन इहि फूल भई ॥  
 हँसि-बोलन, डोलन, वन निहरन, बे-चितवन न जात चितई ।  
 कौन कहै वृषभानु-नदनी, प्रगट भई मनौं मदन जई ॥

\*उक्त पद में एक तुक (सायन) कम है ।

तुम सम नैन, वैन तुमहीं सम, तुम सम आँद-केलि-मई ।  
 तिहारौ रूप धरि तिहारी ही सौँ, तुमहिँ परसि भई तुमहीं मई ॥  
 मोंथें मुकुट, पीतपट, मुरली, वनमाला छवि-छाई रई ।  
 रचक-भेद रह्यौ या तन में, और सकल-छवि पलट लई ॥  
 तिय आलिगन, पिय अवलवन, पिय कौँ हंसि कैँ अक ढई ।  
 फिरि चितवनि औ मुरि-मुनिम्यानि, उघटनि मिस-करि नृत्य-ठई ।  
 इहि कौतुक अनूप मन-मौहन, मनौ घोप रस वेलि छई ।  
 “सूरदास” प्रभु के उर परसत, ललित बलित बलिहारि गई ॥



रास-मडल में वन-ठन माधौ गति में—गति उपजावै हो ।  
 कर-करुन भक्तकार मनोहर, प्रमुदित वैनु-अजावै हो ॥  
 स्याम-सुभग तन पैँ दच्छिन कर, कृजत चरन-सरोजै हो ।  
 अवला वृद अवलोकत हरि-मुख, नैन-विकास मनोजै हो ॥  
 नील पीत पट चलत चारु नट, रसमें नूपुर कूजै हो ।  
 वनक कु भ कुच बीच पसीना, मनुहर मौँतेन पूजै हो ॥  
 हेम लता तमाल अवलवित, सीस मल्लिका फूली हो ।  
 कुचित-फेस, बीच अम्भाने, मनु अलि-माला भूली हो ॥  
 सरद-विमल निस चद विराजत, क्रीडत जमुना-कूलै हो ।  
 “परमानंद स्वामी” कौतूहल, देखत सुर-नर भूलै हो ॥



विसद कदंब सधन-शृन्दावन, गच्यौ रास तरनि तनया तट ।  
 सरद-निसा-उडपति उजियारी, पूर्यौ नाँद-सुरली नागर नट ॥  
 अवन मुनति चली ब्रज मुन्दरि, माजि-सिगार पैँहर भूपन पट ।  
 अति-हुलास, बुमुदिनी-प्रफुल्लित, निरखि लाल ठाडे बसी-वट ॥  
 मडल मधि नाचति पिय-प्यारी गावत सुर टोडी-तान निरट ।  
 “दास सखी” देखति नैननि भरि, वारि-फेरि डारौँ कोटि-मदन-भट ॥

रुचिर रसति रुचि-रासम् ।

कुमुमित कानन नव वेली, द्रम, निजकृत उडुप प्रकाशम् ॥  
 युधती युगल युगल प्रति माधो, करत विनोद विलासम् ।  
 बेरा, मृदंग, मजीर, किकिणी, कण्ठ मधुर मृदु हासम् ॥  
 यमुना-तीर भीर राग, मृग की, मद समीर मुवासम् ।  
 वरपत कुसुम इन्द्र, सुर धावत, शकर त्यजि कैलाशम् ॥  
 निरसि नैन-छवि मुरभयौ मनमथ, लोचन पद्म पलाशम् ।  
 "विष्णुदास" प्रभु गिरिधर व्रीडति, कथा कथित शुक व्यासम् ॥

### राग—पट्

आज कमनीय नय-कज वृन्दा-त्रिपिन,  
 मदन मौहन मुरख राम महल रच्यौ ।  
 उदित उडराज लसि मुदित ब्रजराज-सुत,  
 प्राण प्यारी सहित त्रिनिधि गति भति नच्यौ ॥  
 मुकट की लटक, कडल की चटक,  
 भृकुटीन की मटर, पग पटक वरनी न परत ।  
 हार उर करत, कनन ललित, किंकिनी—  
 मुग्गर मजोर धुनि मुनत जन मन हरत ॥  
 एक तैं एक ब्रज-सुन्दरी अधिक गुन—  
 रूप रम-मत्त गिरिधरन-मग मुर-भरत ।  
 सने जोवन भरी उरप पुनि तिरप—  
 मगीत गति अलग भति तत येई, थेंई वरत ॥  
 स्रजन सुनि मुर नधु मुगतिरा राकली,  
 जदाप पिय निरट तौज नहिं धीगज वरत ।  
 रसिक मनि मुकट-नंदलाल की गोल यह—  
 "गगधर-मिस्र" नैडु न मत तैं टरत ॥

रास विलास रच्यौ नागर नट ।

जुरि मंडल निरतति ब्रज बाला, नवल-निक्ज सुभग जमुना तट ॥  
 उपजत तौन, वधौन, सप्त-सुर, वाजत ताल, मृदग, वीन रट ।  
 सनमुख है नोचति पिय प्यारी, लेति सुधग चाल-गति अट-पट ॥  
 रसिक विहार निरखि ससि हार्यौ, सरद-निसा भूल्यौ अपनी अट ।  
 'कृष्णदास' गिरिधर-श्रीराधा राजति मेघ मनौ दामिनि घट ॥



खेलत राम रमिक—नंदलाल ।

जमुना-पुलिन सरद निस-सोभित, रचि मंडल ठाडीं ब्रज बाल ॥  
 तत थेई, तत थेई, थेई, थेई उघटत, वाजत भौंभ, पखावज, ताल ।  
 जम्यौ सरस-अति राग परसपर, गजत कौमल-वैनु-रसाल ॥  
 सनमुख लेति उरप, तिरप दोउ, राधा-रसिकनि-मदन गुपाल ।  
 मनौ जलद-दामिनि-रस-पूरन, कनक-लता जनु स्याम तमाल ॥  
 सुर पुर-नारि निहारि परम-रस, रति पति मन में भयौ विहाल ।  
 थकित चंद, गति मंद भयौ अति, चूके मुनि ध्यान धरत तिहि काल ॥  
 परम-विलास रच्यौ नागर-नट, विलुलित उरसि मनौ अलि-माल ।  
 "कृष्णदास" लाल गिरिधर-गति, पावत नाहि हस्ति, मराल ॥

### राग-सारंग

बन्यौ रास मंडल अहो ! जुवति-जूथ-मधि नाइक नौचै, गावै ।  
 उघटत सखद येई, थेई, ता-थेई, गति में गति उपजावै ॥  
 वनौ राधा बल्लभ जोरी, उपमा दीजै को री ।

लटकत है वौह जोरी, रीभि रिभावै ।

सुर, नर, मुनि मोहे, जहाँ तहाँ थकित भए ,

मीठी मीठी तान लालन वैनु बजावै ॥

अंग-अंग चित्र कीए, मोर-चद माथें दिऐं ,  
 काछनी काछें पीतानर सोभा पावै ।  
 “चतुर-धिहारी” प्यारी प्यारे उपर चारि डारी ,  
 तन, मन धन, यह सुख कहत न आवै ॥

❀

नट-चर-गति निरतत हूँ, भक्तन उर परसत हूँ,  
 पुलकित-तन हरयत हूँ, रास में लाल-विहारी ।  
 बाजत ताल, मृदंग, उपग, वीना, बोंसुरी, सुर-तरग,  
 प्र-प्र-ता, प्र-प्र-ता, थग थग लेति छंद भारी ॥  
 कटि-काछिनी पीत, सुरग, मोर मुकट अति सुधग,  
 राख्यौ अरध भाल ललित सीम-पेच भारी ।  
 आरति करति व्रन की बाल, हँसि हँसि निज कंठ लाइ ।  
 देखत सुर, नर, मुनि औ ‘रामदास’ बलिहारी ॥

❀

सरनि तनया तीर लाल गिरिनर धरन,  
 राधिका-सग निरतत सुभग राम में ।  
 तत-थेई, तत येई करत गति भेद सौं पिय,  
 अग अग मिलत सुन्दरी ता समैं ॥  
 नद-नदन निरखि सुर-सहित सुर नारि,  
 वैनु बल नोट मुनि मोहे अकास में ।  
 थक्यौ चद औ सन तारका हू थकि रहीं,  
 तान सुर-गान “व्रज पति” करत जा समैं ॥

राग-नट

नागरी । नट—नाराइन गायौ ।

तान, मान, बधान सप्त सुर, रगाहिँ राग मिलायौ ॥

चरन घुघरू जत्र भुजन पै, तीकौ भूमक जमायौ ।  
 तत-थेई, तत-थेई, लै गति में गति, पति-ब्रजराज रिझायौ ॥  
 सकल-तियन मै सहज चातुरी, अग सुधग दिखायौ ।  
 “व्यास” स्वामिनी धनि-धनि राधा, रास में रग रचायौ ॥



आज वन नीकौ रास बनायौ ।

पुलिन पत्रि, सुभग जमुना-तट, भौहन वैनु वजायौ ॥  
 कर ककन, किकिनि-धुनि, नूपुर, सुनि रग, मृग सचुपायौ ।  
 जुनती-मडल-मध्य स्याम वन, नट नाराइन गायौ ॥  
 ताल, मृदग, उपग, मुरज, ढफ, मिलि रस सिन्धु बढायौ ।  
 द्विविधि विसद वृपमानु नदनी, अग सुधग दिखायौ ॥  
 अभिने-निपुन लटक लट लोचन, भृकुटि अनग लजायौ ।  
 तत थेई, तत थेई लै नौतन गति, पति ब्रजराज रिझायौ ॥  
 परम उदार रसिक चूरामनि, सुख वारिद वरपायौ ।  
 परिरभन, चरन आलिंगन, उचित जुवति-जन पायौ ॥  
 वरखत कुसुम मुदित नभ नाइक, इन्द्र निसान वजायौ ।  
 ‘हित हरवस’ रसिक राधा पति, जस वितान जग छायायौ ॥

### राग-पूर्वी

निरतत गुपाल लाल तरनि तनया तीरे ।

जुनती जन सग लिणे, मनमथ-मन करग किणे,  
 अग अग सुखद किणें, राजत बलवीरे ॥  
 लावन्य निधि, गुन-आगर फोक फला गुन सागर,  
 द्विविधि ताप हरति अति सीतल ममीरे ।  
 ‘आसकरन’ प्रभु भौहन नागर, गुन निधान सगीत सागर,  
 रिभ्रत ब्रज बधू नागर फरकत पद-पीरे ॥

## राग-माल्य

मदन गुपाल राम मंडल में मालव-राग रस भर्यौ गावै ।  
 अबधर तान जेधान सप्त सुर मधुर-मधुर सुरलिका बजावै ॥  
 निरतत मुलफ लेति नौतन-गति बहु त्रिधि हस्तक भेद लिखावै ।  
 उघटत मन्द्र तत थैई, तत थैई जुवति वृन्द मन मोद वढावै ॥  
 ववयौ चढ, मोढे रग, नग, मृग, प्रति छिन अति जुअनागति लावै ।  
 “चतुरभुज” प्रभु गिरिधर गढ नागर, सुर, नर, मुनि गति, मति-  
 तिमरावै ॥



कलल नैन प्यारी, अबधर-तान जानै ।

लाग, अलाग, सुर राग, रागिनी, बहुत अनागत आने ॥  
 रासिक राड सिरमार गुनन मे, गुन तुम हीं हौ जान ।  
 “कभन दाम” प्रभु गोवरधन धरि, हरत सपै मन करत गान ॥



निरतत लाल गुपाल राम म, सकल ब्रज गधू सगे ।  
 गिड गिड तरु धग, नत थैई, तत थैई, भामिनि रति रस रगे ॥  
 सरद तिमल नभ उडपति राजत, गावत तान—तरगे ।  
 ताल, मृग, भाँफ औ भालर, वाजत सरम मुधगे ॥  
 सिव, विरव मोढे सुर नर, मुनि, रति पति-गति मति भगे ।  
 “गोविंद” प्रभु रस रास रासिक-मनि, भामिनि लेति उडगे ॥

## राग-संगठ

धन्यो रास-मटल घर तामे-महा मुदित मृदुल राधा प्यारी ।  
 घरनीं कदा दानक अग अग नी एक रूप, एक वेम  
 एक रग, एक रास ता में लेत उपजत गति अति न्यारी ॥  
 गावत ता तरग, निरतत उरप, तिरप—  
 लाग, डाट, उघटत सपद उपज महा री !



लोल कटि-देस ररति रतन-मेखला,  
 \* नूपुर क्वनित हस्त हाव दिखरावै ॥  
 चपल मोहै नैन-रूप, रचिर मुसिकावनी,  
 रूप, गुन-रासि प्राण पतिहिँ रिभावै ।  
 वृषभानु-नदनी, गिरिधरन नद-सुत-  
 चरन रैनु नित तहाँ "कृष्णदास" पावै ॥

### राग-जै-जैवन्ती

वृन्दावन वसी-रट, वसीवट, जमुना तट,  
 रास में रसिक-प्यारौ खेल रन्धौ वन में ।  
 राधा-भाधौ कर जोरै, रवि ससि होत भौरै,  
 मडल में निरतति दोऊ सरस सघन मै ॥  
 मधुर-मृदग वाजे, मुरली की धुनि गाजै,  
 सुवि न रही कबू री । सुर, मुनि, जन मै ।  
 "नददास" प्यारौ, रूप उजियारौ कृष्ण,  
 शीडा देखि अमित सब जन मन में ॥

### राग-ईमन

लाल-सग, रास रग, लेति मान रसिक रवन,  
 अ-अ ता, अ-अ ता, त-त येई गति लीने ।  
 स री ग म प ध नी धुनि, ब्रजराज कुँवर गावत री ।  
 अति जति सगीत निपुन तननन गति चीने ॥  
 उदित-मुदित सरद चद, टूटे रुचुकी के वद,  
 निरग्न-निरग्न विभव केदि मदन हीने ।  
 विहरत वन रस विलास, दपति-मन ईपद हास,  
 'छीत स्वामि' गिरिवरधर रस वस तव कीने ॥

राग-मान्हरी

बन्या मोर मुकुट नटर नयु स्याम-सुन्दर कमल-नेत्र,  
पासी भौंह, ललित भाल, पुँघरारी अलकें ।  
पीत वसन, मौपी माल, हियो पटक कठ लाल,  
हँमनि, त्रोल्लनि, गावनि गंड स्रजन कडल भलकें ॥  
कर-पट भूषण अनूप, जेटि सदन मंइन रूप,  
अदभुत बदन चढ देरिा, गोपी भूली पलकें ।  
“कहि भगवान्हित गमराय” प्रभु ठाटे रास मंटल म,  
राधा मो गह जोरी कियो, हिये प्रैम-ललकें ॥

राग-अड़ाना

पसीनट के निरट हरिरास रच्यो है, मोर मुकुट औ आँदें पीत पट ।  
बृन्दावन-रज सधन जन, मुभग पुलिन औ जमुना के तट ॥  
आलस भरे उनींटे दोउ जन—( श्री ) राधा जू औ नागर नट ।  
“दयाम्”रमिक तन, मन, बन फूले, लेति बलीया कर अरुारिन चट ॥

राग-केदारा

मुनि धुनि मुरली बाजै वन, हरि राम रच्यौ ।  
कज कुज टुम, बेलि प्रफुलित, मडल कचन मनिन सच्यौ ॥  
निरताति जुगल किसोर किसारी, मन मिल राग केदारी सच्यौ ।  
“श्री हरिदाम”के स्वामी स्यामा कजविहारी, नीकें आनु गुपाल नच्यौ ॥

ॐ  
रास रच्यौ वन बुँघर-किसोरी ।

मंडल-प्रिमल-मुभग बृन्दावन, जमुना पुलिन स्याम घन घोरी ॥  
वाजत रैन, रवात्र, कित्ररी, करन, नूपुर, किकिभि-सोरी ।  
तत थेई, तत थेई सवद उघटत पिय, भले बिहारि बिहारिन जोरी ॥

वरहा मुकुट चरन तट आवत, धरैँ भुजन में भामिन कौं री ।  
अलिगन, चुवन, परिरंभन, “परमानंद” डारत वृन तोरी ॥

❀

आज नंद नद मुख-चद वन राजै ।

जटित मनि मुकुट औ सुभग कडल चटक,

वसन पीत पट भ्रूमटक छाजै ॥

रास में रसिक वर, ललित सगीत-सुर,

मधुर-सुरली, मृदग, ताल—वाजै ।

“श्री निट्टल गिरिधरन” कनित नूपुर चरन,

सुनति भई घोप तिय थकित आजै ॥

❀

नॉचति लाडिली-रास में सुनौं हो सहेली । रग रबौ ।

ताही समैँ रस-रास सहाइक, सुरजट मलय सौ पवन वहचौ ॥

उडपति-किरन सुरजित कानन, नव-कुसुमावलि तिमिर दह्यौ ।

जुवती मडल मध्य स्याम घन, राग वारिनिधि बैनु गह्यौ ॥

बोलत तोहिँ सुरत मिलवन कौं, उठिँ चलि मान मेरौ कह्यौ ।

“कृष्णदास” प्रभु गिरिधर नागर, तेरौ बिलव क्यों जात सह्यौ ॥

❀

आजु गुपाल रन्यौ रास, देखति होति जिय हुलास,

नॉचति वृपभानु-सुता-सग रंग भीने ।

गिडि गिडि, तक थग, थग, ततत-थेई—थेई, थेई,

गावत केदारौ-राग सरस-तान लीने ॥

फूले बहु-भॉति-फूल, सुभग पुलिन-जमुना कूल,

मलय पवन वहत गगन, उडपति गति छीने ।

“गोविंद” प्रभु करति केलि, भामिनि रस सिन्धु मेल

जै जै सुर सबद कहत आनंद-रस कीने ॥

## राग-विहाग

वन में राम रच्यौ जनगारी ।

जमुना पुलिन मल्लिका फली, सरद रैन उनियारी ॥  
 मडल-बीच स्याम वन सुन्दर, राजति गोप जुमारी ।  
 प्रगटत कला अनेक-रूप तिहिँ अमर लाल विहारी ॥  
 सीस मुकट कुडल मी भलकन अलक वनी घुँघरारी ।  
 ऋधु वंठ मीवा की डोलन, छीन लक लेहै नारा ॥  
 धाड़, धाड़ भूपटत, पर लपटत, उप, तिरप-नाति न्यारी ।  
 निरतत, हँसत, मयूर मडली, लागत सोभा भारी ॥  
 वैनु-नाँद-धुनि सुनि सुर, नर, मुनि, तन की दसा जिसारी ।  
 "श्री विट्ठल" गिरिधरन लाल की वानिक पै बलिहारी ॥

ॐ

मानों माई वन-वन अतर दामिनि ।

वन दामिनि, दामिनि वन अतर, सौभित हरि ब्रज-भामिनि ॥  
 जमुना पुलिन मल्लिका मुकलित, सरद सुहाई जामिनि ।  
 सुन्दर समि, गुन, रूप-नासि तिधि, अँनद मन निखामिनि ॥  
 रच्यौ रास, मिलि रमिक-राड सौँ, मुदित भई ब्रज-वामिनि ।  
 रूप निधान स्याम वन सुन्दर, अग अग अभिरामिनि ॥  
 राजन, मीन, मयूर, हस पिक, भेद नडे गज-नामिनि ।  
 कौतुक वने सु सुर "नागर" सँग, काम जिसोह्यौ कामिनि ॥

ॐ

पिय कौ नँचवनि सिरयागति प्यारी ।

वृन्दावन मे राम रच्यौ है, मरद-रैन-उजियारी ॥  
 ताल, मृत्ग, उपग बजावति, अति प्रवीन ललितारी ।  
 रूप-भरी, गुन हाथ छरी लै, डरपति छैल विहारी ॥  
 बीना, वैनु, नृपुर धुनि वाजत, रग-मृग बुद्धि चिसारी ।  
 "व्यास" स्वामिनी की छवि निरगति, रीमि देति कर तारी ॥

## श्री रासलीलाऽमृतस्तोत्र

व्रजति कज मैं मजु-गोंसुरी, ब्रज-वधू वेंधी प्रेम-रासुरी ।।  
घर तजौ गई कृष्ण-पासुरी, सरद-चंद कीन्यौ उजासुरी ।।

हरि कियौ जवै मद हासुरी, निररि कें भयौ ताप-नासुरी ।  
सुमन-कज राजें विकासुरी, भ्रमर-पज गजें सुवासुरी ॥  
गुन भरी तिया रूप रासुरी, पुनि प्रवीन है प्रेम गोंसुरी ।  
अतनु-मोद-भाज प्रकासुरी, मिलि गुपाल कीन्यौ विलासुरी ॥

मद-गुमान हीं जानि तासुरी, हृदय-मैं छिपे श्री निवासुरी ।  
निरह जाति वाङ्मयौ हुतासुरी, तरु-लतानि पूछें उदासुरी ॥  
सघन-कुज कीनीं तलासुरी, गुन-कथा रची याहि आसुरी ।  
भरति नैनि ऊंचे उसासुरी, करि-कृपा मिले पीत वासुरी ॥

वदन-कज है चार-हासुरी मदन-मान जातें निरासुरी ।  
कर गहै जुरी आस-पासुरी, भरति थक वाङ्मयौ हुलासुरी ॥  
अधर-पान कीनैहुँ प्यासुरी, मिटति नोहि जैसे उपासुरी ।  
लिपटि स्याम सौ ऐसैं भासुरी, घन मुदाभिनी भाद्र-मासुरी ॥

करति कृष्ण के मग रासुरी, सरस राग गावैं सुलासुरी ।  
सुर जु मग नीकें निकासुरी, मुरज वीन वाजें मिठासुरी ॥  
व्रजत मजु मजीर लासुरी, नचति मोर छांडें अवासुरी ।  
सुर-विमान छाए अकासुरी, परत पुस्प वृष्टी तहां सुरी ॥

कटि गई तनै रोह फासुरी, हटि गयौ जु ससार त्रासुरी ।  
चरन-भांकि दीजै निवासुरी, सरन "गोकुलाधीस" दासुरी ॥\*

\*उक्त छंद, दो सौ यावन वैष्णव की याता और चौरासी वेष्णवों की याता के रचयिता प्रसिद्ध श्री 'गोकुलनाथजी गोस्वामि कृत' है ।

## भँवर-गीत

उपा<sup>१</sup> को उपदेस सुनो ब्रजनागरी,  
रूप सील लावन्य सभै गुन आगरी ।  
प्रेम धुजा रसरूपिनी उपजायनि सुख पुज,  
मुन्दर स्याम विलासिनी नय बृन्टावन कुज ।

सुनो ब्रजनागरी ॥ १ ॥

कहन स्याम सदेस एरु मे तुमपै आयौ,  
कहन सभै सनेत कहूँ औसर<sup>२</sup> नहि पायौ ।  
सोचत ही मन में रहो कव पाऊँ टुक ठाउँ,  
कहि सँदेस नँदलाल को बहुरि मधुपुरी जाउँ ।

सुनो ब्रजनागरी ॥ २ ॥

सुनत स्याम को नाम ग्राम गृह की सुधि भूली,  
भरि आनँद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली ।

पाठान्तर—

१ उधव को उपदेस ।

२ अउसर नहि पायो ।

पुलकि गोम सब अँग भये भरि आये जल नैन,  
कठ घुटे गदगद गिरा बोले जात न वैन ।

व्यवस्था<sup>१</sup> प्रेम की ॥ ३ ॥

अर्घासन वैठारि बहुरि परिकरमा दीन्ही,  
स्याम सरा निज जानि बहुरि सेवा बहु कीन्ही  
ब्रूभत<sup>२</sup> मुधि नँदलाल की विहँसत मुख ब्रजवाल,  
नीके हैं बलवीर ज् बोलति बचन रसाल ।

सखा सुन स्याम के ॥ ४ ॥

कुसल स्याम औ राम<sup>३</sup> कुसल सगी सब उनके,  
जटकुल सिगरे कुसल परम आनद सवन के ।  
ब्रूभन ब्रज कुसलात को हौ आयौ तुम तीर,  
मिलिहै थोरे दिवस मै जनि जिय होहु अरीर ।

सुनो ब्रजनागरी ॥ ५ ॥

सुनि मोहन सटेस रूप सुमिरन हैं आयौ,  
पुलकित आनन कमल अग आवेस जनायो ।

१ विवस्था प्रेम की ।

२ प्रद्युत मुधि नँदलाल की ।

३ राम अरु राम ।

विह्वल<sup>१</sup> है धरनी परीं ब्रजवनिता मुरभाय,  
 है जल छींट प्रबोधही उगो<sup>२</sup> वैन मुनाय ।

सुनो ब्रजनागरी ॥ ६ ॥

वे तुमते नहिं दूगि ग्यान की अखिन दग्गो,  
 अखिल विश्व भरपूरि रूप सब उनहिं विसेखा ।  
 लोह दारु पापान में जल थल महि आकास,  
 मचर अचर बरतत सबे जोति ब्रह्म परकास ।

५११

सुनो ब्रजनागरी ॥ ७ ॥

कौन ब्रह्म को जोति ग्यान कासो कहो ऊगो,  
 हमरे सुदर स्याम प्रेम को मारग मूयो ।  
 नैन वैन सुति नासिका मोहन रूप लखाय,  
 मुधि जुधि सब मुरली हरी प्रेम ठगोरी लाय ।

सखा सुन स्याम के ॥ ८ ॥

यह सब सगुन उपायि रूप निर्गुन है उनको,  
 निराकार<sup>३</sup> निर्लेप लगत नहिं तीनों गुन को ।

१ विह्वल है धरनी परा ।

२ ऊधर वैन मुनाय ।

३ निरविचार निर्लेप लगत नहि ।



हाथ न पाँउ<sup>१</sup> न नासिका नैन वैन नहिं कान,  
अन्चुत जोति प्रकासहीं सकल विस्व को प्रान ।

सुनो ब्रजनागरी ॥ ९ ॥

जो मुख नाहिन हुतो कहो किन माखन खायो,  
 पायन विन गोसग कहो वन वन को थायो ।  
 आँखिन में अजन दयो गोवरवन<sup>२</sup> लयो हाथ,  
 नन्द जसोदा पूत है कुँवर कान्ह ब्रजनाथ ।

सखा सुन स्याम के ॥ १० ॥

जाहि कहत तुम कान्ह ताहि कोउ पिता न माता,  
 अरिपल अड ब्रह्मड विस्व उनहीं में जाता ।  
 लीला गुन अवतार हैं धरि आये तन स्याम,  
 जोग जुगुति ही पाएये परब्रह्म पुर राम<sup>३</sup> ।

सुनो ब्रजनागरी ॥ ११ ॥

ताहि बतावहु जोग जोग ऊधौ जेहि भाने  
 प्रेम सहित हम पास नद नदन गुन गावैं ।

१ हाथ न पाँय ।

२ गोवर्द्धन लयो हाथ ।

३ पदधाम ।

नैन वैन मन प्रान में मोहन गुन भरपूर,  
प्रेम पियुपहि<sup>१</sup> छाँड़ि कै कौन मपेटै धुरि ।-

सग्या सुन स्याम के ॥ १२ ॥

धुरि धुरी जाँ होय ईस क्यों मीस बढ़ावै,  
धुरि त्रेत्र में आय कर्म करि हरिपद पावै ।  
धुरिहि तें यह तन भयो धुरिहि तें ब्रह्मड,  
लोक चतुर्दस धुरि तें सप्तद्वीप नवरसड ।

सुनो ब्रजनागरी ॥ १३ ॥

कर्म धुरि की बात कर्म अधिकारी जानै,  
कर्म धुरि को आनि प्रेम अमृत में सानै ।  
तपही लां सब कर्म है जग लो<sup>२</sup> हरि उर नाहिं,  
कर्मरुद्ध सब तिस्र के जीव तिमुरख हैं जाहिं ।

सखा सुन स्याम के ॥ १४ ॥

तुम कर्महि कस निन्दत जासों सदगति होई,  
कर्मरूप तें बली नाहि त्रिभुवन मे कोई ।  
कर्महि ते उत्पत्ति है कर्महि तें ह नास,  
कर्म क्रिये ते मुक्ति है परब्रह्मपुर वास ।

सुनो ब्रजनागरी ॥ १५ ॥

<sup>१</sup> पियुप छाँड़ि कै ।

<sup>२</sup> जग लोकि हरि उर नाहि ।

कर्म पाप अरु पुन्य लोह सोने की बेरी,  
 पायन बधन टोउ कोउ मानौ बहुतेरी ।  
 ऊँच कर्म तें स्वर्ग है नीच कर्म ते भोग,  
 प्रेम बिना सब पचि मरै विषय वासना रोग ।

सखा सुन स्याम के ॥ १६ ॥

कर्म बुरे जो होंय जोग काहे को<sup>१</sup> मारे,  
 पद्मासन सब धारि रोकि इन्द्रिन को मारै ।  
 ब्रह्म अग्नि जरि सुद्ध है सिद्धि<sup>२</sup> समाधि लगाय,  
 लीन होय सायुज्य मे जोतिहि जोति समाय ।

सुनो ब्रजनागरी ॥ १७ ॥

जोगी जोतिहिं भजै भक्त निज रूपहि जानै,  
 प्रेम पियूपहि<sup>३</sup> प्रगट स्यामसुन्दर उर आने ।  
 निर्गुन गुन जो पाइये लोग कहै यह नाहि,  
 घर आयो नाग न पूजहीं बँबी पूजन जाहि ।

सखा सुन स्याम के ॥ १८ ॥

जो उनके<sup>४</sup> गुन होंय वेद क्यों नेति बखानै,  
 निर्गुन सगुन आतमा गचि ऊपर सुख सानै ।

१ कोउ काहे धारें ।

२ सुन्य समाधि लगाय ।

३ प्रेम पियूपै प्रगट ।

४ जो हरि के गुन होंय ।

वेद पुराननि खोजि के पायो नहि गुन एक,  
गुनहूँ के गुन-होहि जाँ कह अक्रास किहि टेक ।

सुनो ब्रजनागरी ॥ १९ ॥

जो उनके गुन नाहि और गुन भये कहाँ तें,  
बीज बिना तरु जमँ मोहि तुम कही कहाँ तें ।  
वा गुन की परछाँइ री माया दर्पन बीच,  
गुन तें गुन न्यारे भये अमल वारि मिलि कीच ।

सरया सुन स्याम के ॥ २० ॥

माया के गुन और और गुन हरि के जानो,  
उन गुन को उन मोहि आनि काहे को सानो ।  
जाके गुन अरु रूप को जान न पायो भेद,  
तातें निगुन ब्रह्म को वदत उपनिषद वेद ।

सुनो ब्रजनागरी ॥ २१ ॥

वेदहु हरि के रूप खास मुख ते जो निसरै,  
कर्म क्रिया आसक्ति रावै पिबली सुनि तिसरै ।  
कर्म मध्य हूँ सब किनेहु न पायो देख, ०  
कर्म रहित हो पाये तातें प्रेम तिसरेख ।

सरया सुन स्याम के ॥ २२ ॥

म जो कोऊ वस्तु रूप देखत लो लागै,  
स्तु दृष्टि बिन कहाँ कहा भेमी अनुरागै ।

तरनि चन्द्र के रूप कों गुन नहीं पायो जान,  
तौ उनको कह जानिये गुनातीत भगवान ।

सुनो ब्रजनागरी ॥ २३ ॥

तरनि अकास प्रकास जाहिमें<sup>१</sup> रहौ दुराई,  
दिव्यदृष्टि विनु कहां कौन पै देख्यौ जाई ।  
जिनकी वै आँखें नहीं देखै कब वह रूप,  
तिन्है साँच क्यों ऊपजै परे कर्म के कूप ।

सखा सुन स्याम के ॥ २४ ॥

जब करिये नित कर्म भक्तिहू जाँमै आई,  
कर्म रूप कारें कहां कौन पै छूट्यौ जाई ।  
क्रम क्रम कर्म सबहि किये कर्म नास हैं जाय,  
तव आतम निहकर्म<sup>२</sup> हैं निर्गुन ब्रह्म समाय ।

सुनो ब्रजनागरी ॥ २५ ॥

जौ हरि के नहीं कर्म कर्मवधन क्यों आवै,  
तौ निर्गुन है वस्तु मात्र परमान बतावै ।  
जौ उनको परमान है तो प्रभुता नहिं,  
निर्गुन भये अतीत के सगुन

सखा

१ तेजमय रह्यौ ऊपर ।

२ निःकर्म है ।

जो गुन आवैं दृष्टि मॉक नहिं ईस्वर सारं,  
 उन सवहिन तें वासुदेव अञ्जुत<sup>१</sup> हैं न्यारे ।  
 उद्री दृष्टि विकार तें रहित अधोछज जोति,  
 सुद्ध सरूपी जान जिय वृप्ति जु ताते होति ।

सुनो ब्रजनागरी ॥ २७

नास्तिरु जे हैं लोग रुहा जान हित रूपै,  
 प्रगट भानु को छाड़ि गहँ परछाही धूपै ।  
 हमकों विनुवा रूप के और न कछु सुहाय,  
 १ ज्यों करतल आमलक के कोटिक ब्रह्म दिखाय ।  
 सरा सुन स्याम के ॥ २८ ॥

ऐसे में नन्दलाल रूप नैनन के आगे,  
 १ श्राय गये छत्रि छाये उने पियरे उर वागे ।  
 उषौ<sup>२</sup> सां मुख मोरि के वैठि सकुचि कह वात,  
 प्रेम अमृत मुख तें सवत अजुज नैन बुचात<sup>३</sup> ।  
 तरक रसरीति की ॥ २९ ॥

अहो नाथ श्रीनाथ<sup>४</sup> और जदुनाथ गुसाई,  
 नन्द नन्दन विह्वलति फिरति तुम विन सब गाई ।

१ अच्युत हैं न्यारे ।

२ उषय सां मुख मोरि व ।

३ प्रदुन नैन बुवान ।

४ रमानाथ और जदुनाथ गोभाई ।

काहे न फेरि कृपाल हैं गो ग्यालन सुधि लेहु,  
 टुख जलनिधि हम बूडहीं कर अवलपन देहु ।

निठुर हैं कहँ रहे ॥ ३० ॥

कोउ कहै अहो दरस देहु पुनि वेनु बजावौ,  
 दुरि दुरि वन की ओट कहा हिय लोन लगावौ ।  
 हमकों तुम पिय एक हौ तुमकों हमसी कोरि,  
 बहुत भॉति नीके रहो<sup>१</sup> प्रीति न डारौ तोरि ।

एकही वार यौ ॥ ३१ ॥

कोउ कहै अहो दरस देत पुनि लेत दुरारै,  
 यह छल विद्या कहो कौन पिय तुम्है सिखाई ।  
 हम परबस आधीन हैं तात बोलत दीन,  
 जल विन कहौ कैसे जियै गहिरे जल की मीन ।

विचारहु रावरे ॥ ३२ ॥

कोउ कहै अहो स्याम कहा इतराय गये हौ,  
 मथुरा को अतिकार पाय महाराज भये हौ ।  
 ऐसी कछु प्रभुता हुती जानत कोऊ नाहि,  
 उबला बुद्धि हम डर गई बली डरै जग माहि ।

पराक्रम जानि कै ॥ ३३ ॥

कोउ कहै अहो स्याम चहत मारन जो ऐसे  
गिरि गोवर्धन मारि करी रन्ध्रा तुम कैसे ।  
ब्याल अनल विष ज्वाल तें राखि लये सब ठौर,  
अब बिरहानल दहत हो हँसि हँसि नन्दकिसोर ।

चोरि चित लै गये ॥ ३४ ॥

कोउ कहे ये निठुर इन्हें पातक नाहें व्यापै,  
पाप पुन्य के करनहार ये ही है आपै ।  
इनके निर्दय रूप में नाहिन कछू विचित्र,  
पय पीचत ही पूतना मारी बाल चरित्र ।

मित्र ये कौन के ॥ ३५ ॥

कोउ कहै री आज नाहें आगे चलि आई,  
रामचद्र के धर्म रूप में ही निठुराई ।  
जग्य करावन जात हे विस्वामित्र समीप,  
मग में मारी ताड़का रघुवसी कुलदीप ।

बालही गीति यह ॥ ३६ ॥

कोउ कहै जे परम उर्म इस्वीजित पूरे,  
लच्छ लच्छ सधान धरे आयुध के स्तरे ।  
सीताजू के कहे तें सूपनखा पर कोपि,  
छेदि अग बिरूप के लोगन लज्जा लोपि ।

कहा ताकी क्या ॥ ३७ ॥



कोउ कहै री सुनौ और उनके गुन आली,  
बलि राजा पै गये भूमि माँगन वनमाली ।  
माँगत वामन रूप धरि नापत करी कुदाँव  
सत्य र्म सब छॉडि कै धर्यौ पीठ पै पाँव ।

लोभ की नाव ये ॥ ३८ ॥

कोउ कहै री कहर हिरनकस्यप तें विगर्यौ,  
परम ढीठ प्रह्लाद पिता के सनमुख भ्रगर्यौ ।  
सुत अपने को देत हो सिच्छा खभ बंधाय,  
इन वपु र्गि नरसिंह को नखन विदार्यौ जाय ।

विना अपराध ही ॥ ३९ ॥

कोउ कहै उन परसुराम द्वै माता भारी,  
फरसा कौंने री भूमि छत्रिन सघारी ।  
सोनित कुण्ड भराय के पोषे अपने पित्र,  
उनके निर्दय रूप में नाहिन कछू विचित्र ।

विलश रुह मानिये ॥ ४० ॥

कोउ कहै री कहा दोष सिसुपाल नरसै,  
व्याह करन कौ गयौ नृपति भीषम के देसै ।  
दलबल जोरि वरात कौ ठाढे है छवि वाढि,  
उन छल करि दुलही हरी छुप्रित ग्रास मुख काढि ।

आपने स्वारथी ॥ ४१ ॥

यहि विधि होट आवेस परम प्रेमहिं अनुरागा,  
 और रूप पिय चरित तहों ते देखन लागी ।  
 रोम रोम रहे व्यापि कै जिनके मोहन आय,  
 रतिनके भूत भविष्य का जानत कौन दुराय ।

रंगीली प्रेम की ॥ ४२ ॥

देखत उनको प्रेम नेम उपा<sup>१</sup> को भाज्यौ,  
 तिमिर भाव आवेस बहत अपने मन लाज्यौ ।  
 मन में रुह रज पाय कै ले माये निज धारि,  
 हां तो कृतकृत है रखां त्रिभुवन आनंद वारि ।

बटना जोग ये ॥ ४३ ॥

रुवहुं रुठे गुन गाय स्याम के इन्हि रिम्भाऊँ,  
 प्रेम भक्ति तें भले स्यामसुन्दर को पाऊँ ।  
 जिहि विधि मोरै रीझर्हा सो विधि करा बनाय,  
 ताते मो मन सुख है दुखिमा ग्यान मिटाय ।

पाय रस प्रेम को ॥ ४४ ॥

ताही छिन इक भँवर कहें तें उडि तहें आयो,  
 प्रज वनितन के पुज माहि गुजत छनि छायो ।

१ ऊपर को भाज्यो

वैद्यों चाहत पायें पर अरुन कमल दल जानि,  
मनु मधुकर उर्यो<sup>१</sup> भयों प्रथमहि प्रगठ्यौ आनि ।

मधुप को भेस धरि ॥ ४५ ॥

ताहि भँवर सां कहै सबै प्रति उत्तर वातै,  
तर्क वितर्कनि—जुक्त—प्रेमरस—रूपी घातै ।  
जनि परसौ मम पाँव रे तुम मानत हम चोर,  
तुमही साँ कपटी हुते मोहन नदकिसोर ।

यहाँ तें दूरि हो ॥ ४६ ॥

कोउ कहै री विस्व माँझ जेते है कारे,  
रूपट कुटिल की कोटि परम मानुप मसिहारे ।  
एक स्याम तन परसि कै जरत आजु लौ अग,  
ता पाछे यह मधुपहू लायो जोग भुवग ।

कहाँ इनको दया ॥ ४७ ॥

कोउ कहै री मधुप भेस उनहीं को धार्यौ,  
स्याम पीत गुञ्जार वैन किंकिनि भनकार्यौ ।  
वा पुर गोरस चोगि कै फिरि आयो यहि देस,  
उनको जनि मानहु कोऊ कपटी इनको भेस ।

चोरि जनि जाय कछु ॥ ४८ ॥

कोउ कहै रे मधुप कहै अनुरागी तुमको,  
 कोने गुन को जानि यही अचरज ह हमको ।  
 कारो तन अति पातकी मुव पियरो जगनिंद,  
 गुन अबगुन सब आपनो आपुहि जानि अलिंद ।

देखि लँ प्रारसी ॥ ४९ ॥

कोउ कहै रे मधुप कहा तू रस को जानै,  
 बहुत कुमुम पै बैठि सँ आपन सम मानै ।  
 आपन मम हमको कियो चाहत है मतिमद,  
 द्वित्रिय ग्यान उपजाय कै दुखित प्रेम आनद ।

कपट के छट सों ॥ ५० ॥

कोउ कहै रे मधुप कहा मोहन गुन गावै,  
 हृदय कपट सों परम प्रेम नाहिन छवि पावै ।  
 जानति हौ सब भौति कै सरवस लयो चुगाय,  
 यह वौरी ब्रजवासिनी को जो तुम्हे पतियाय ।

लहे हम जानिकै ॥ ५१ ॥

कोउ कहै रे मधुप कौन कह तोहिं मधुकारी,  
 लिये फिरत मुव जोग गाठि काटत पेकारी ।  
 रुधिर पान कियो बहुत कै अरुन अर रंगरात,  
 अर ब्रज में आये कहा करन कोन को घात ।

जात किन पातकी ॥ ५२ ॥

कोउ कहै रे मधुप प्रेम पटपट पसु देख्यो,  
 अथलौ यहि ब्रजदेस माहिं कोउ नाहिं विसेर्यो ।  
 द्वे सिंग आनन उपर रे कारो पीरो गात,  
 रसल अमृत सम मानही अमृत देखि डगत ।

॥ ५३ ॥ वादि यह रसिकता ॥ ५३ ॥

कोउ कहै रे मधुप ग्यान उलटो लै आयो,  
 मुक्ति परे जे रमिक तिन्है फिरि कर्म बतयो ।  
 वेद उपनिषद सार जा मोहन गुन गहि लेत,  
 तिनको आतम सुद्ध करि फिरि फिरि सुखा देत ।

॥ ५४ ॥ योग चटमार में ॥ ५४ ॥

कोउ कहै रे मधुप निगुन इन बहुकरि जान्यो,  
 तर्क वितर्कनि जुक्ति बहुत उनही यह आन्यो ।  
 पै इतनो नहि जानही वस्तु विना गुन नाहिं,  
 निगुन भए अतीत के सगुन सकल जग माहिं ।

सखा सुन स्याम के ॥ ५५ ॥

कोउ कहै रे मधुप तुम्है लज्जा नहिं आवै,  
 सखा तुम्हारो स्याम कूवरीनाथ कहावै ।  
 यह नीची<sup>२</sup> पदवी हुती गोपीनाथ रुहाय,  
 अथ जदुकुल पावन भयो दासी जूठन खाय ।

मुरत रुह बोल को ॥ ५६ ॥

कोउ कहै अहो मधुप स्याम जोगी तुम चेला  
 कुचजा तीरय जाय क्रियो इट्टिन को मेला ।  
 मधुवन सुप्रि विसराय है आये गोकुल माहि,  
 इहाँ सबै प्रेमो वसैं तुमरो गाहरु नाहि ।

पमारो रापरै ॥ ५

कोउ कहै रे मधुप साधु मधुवन के ऐसे,  
 और तहाँ के सिद्ध लोग हैं ह ध्रु—कैसे ।  
 औगुन गुन गहि लेत है गुन को डारत मेदि,  
 मोहन निगुन को गहे तुम साधुन काँ भेंटि ।

गोंठि को खोय कै ॥ ५८

कोउ कहै रे मधुप होहिं तुमसे जो सगी,  
 वयो न होहिं तन स्याम सफल जातन चाँरगी ।  
 गोकुल में जोरी कोऊ पाई नाहि मुरारि,  
 मदन त्रिभगी आपु हे करी त्रिभगी नारि ।

रूप गुन सील की ॥ ५

यहि विधि सुमिरि गुविन्द कहत उभाः प्रति गोपी,  
 भूँग सग्या करि कहत सकल कुल लखा लोपी ।/)

१ गोविन्द कहत ऊपर प्रति गोपी ।

ना पाछे इकबार ही रोई सकल ब्रजनारि,  
हा करनामय नाय हो केसव कृष्ण मुरारि ।

फाटि हियरो चल्यो ॥ ६० ॥

उमगै जो कोउ सलिल सिन्धु लै तन को धारनि,  
भीजत अम्बुज-नीर कचुकी भूपन हारनि ।  
ताही प्रेम प्रवाह में उधौ<sup>१</sup> चले बहाय,  
भली ग्यान की मँड ही ब्रज मे दीन्हीं आय ।

सकल कुल तरि गयो ॥ ६१ ॥

प्रेम प्रसंसा करत सुद्ध जो भक्ति प्रकासी,  
दुविधा ग्यान गिलानि मदता सिगरी नासी ।  
कहत मोहिं विस्मय भयो हरि के ये निज पात्र,  
हौ तो कृतकृत है गयो इनके दरसन मात्र ।

मेदि मल ग्यान को ॥ ६२ ॥

पुनि पुनि कहि हरि कहन बात एकान्त पठायो,  
मै इनकौ कलु मरम जानि एकौ नहिं पायो ।  
हौ तो निज मरजाद सों ग्यान कर्म कद्यो रोपि,  
ये सब प्रेमासक्ति है कुल लज्जा करि लोपि ।

धन्य ये गोपिका ॥ ६३ ॥

जो ऐसे मरजाद भेटि मोहन को ध्यावै,  
 काहे न परमानन्द प्रेम पद पी कौ पावै ।  
 ग्यान जोग सब कर्म तैं प्रेम परे है साँच,  
 हौं यहि पट्टर दैत हो हीरा आगे काँच ।

विपमता बुद्धि की ॥ ६४ ॥

धन्य धन्य जे लोग भजत हरि कौ जो ऐसे,  
 और जो पारस प्रेम विना पावत कोउ कैसे ।  
 मेरे या लघु ग्यान कौ उर में मद रख्यो उपाध<sup>१</sup>,  
 अब जान्यौ ब्रज प्रेम को लहत न आयो आध ।

वृथा स्रम करि मर्यौ ॥ ६५ ॥

पुनि कह सब तैं साधु सग उत्तम हैं भाई,  
 पारस परसे लोह तुरत कचन है जाई ।  
 गोपी प्रेम प्रमाद कौ हौं अब सीर्यौ आय,  
 ऊपर तैं मधुकर भये दुनिया ग्यान मिटाय ।

पाय रस प्रेम को ॥ ६६ ॥

पुनि रुहि परसत पाँय प्रथम हो इन्हिं निवार्यौ,  
 भुँग सग्या करि कहत निंद सबहिन तैं दार्यौ ।

१ उर मद रख्यो उपाध ।



अब रहिहौ ब्रजभूमि की है पग मारग धूरि,  
विचरत पद मोपै परै सब सुख जीवन मूरि ।

मुनिनहँ दुर्लभै ॥ ६७ ॥

कैस होंहु द्रुम लता वेलि वल्ली वन माहीं,  
आवत जात सुभाय परै मोपै परब्याहीं ।  
सोऊ मेरे वस नहीं जो कछु करौ उपाय,  
मोहन होहिं प्रसन्न जो यह वर माँगों जाय ।

कृपा करि देहु जू ॥ ६८ ॥

ऐसे मग अभिलाष करत भथुरा फिरि आयौ,  
गदगद पुलकित रोम अग आवेस जनायौ ।  
गोपी गुन गावन लग्यौ मोहन गुन गयौ भूलि,  
जीवन को लै का करौ पायौ जीवन मूलि ।

भक्ति कौ सार यह ॥ ६९ ॥

ऐसे सोचत जहाँ स्याम तहँ आयो धायो,  
परिकरमा ढडौत बहुत आवेस जनायो ।  
कछु निर्दयता स्याम की करि क्रोधित दोउ नैन,  
कछु ब्रजवनिता प्रेम की बोलत रस भरि बैन ।

सुनो नँदलाडिले ॥ ७० ॥

करुनामयी रसिकता है तुम्हरी सब भूठी,  
जबही लौ नहिं लखो तबहिं लौ वाँची मूठी ।

मैं जान्यो ब्रज जायके तुम्हरो निर्दय रूप,  
जे तुमको अलवही तिनको मेलो कूप ।

कौन यह धर्म है ॥ ७१ ॥

पुनि पुनि कहै अहो स्याम जाय वृदावन रहिये,  
परम प्रेम को पुज जहा गोपिन संग लहिये ।  
और काम सन छोंडि कै उन लोगन सुख देहु,  
नातरु दृष्टो जात है अवही नेह सनेहु ।

सही जे

करांगे ताँ कहा ॥ ७२ ॥

सुनत सखा के नैन नैन भरि आये दोऊ,  
विनस प्रेम आवेस रही नाहीं सुधि कोऊ ।  
रोम रोम प्रति गोपिका है रहि साँवर गात,  
कल्पतरोरुह साँवरो ब्रजवनिता भई पात ।

उलहि अंग अङ्ग तें ॥ ७३ ॥

है सचेत कहि भलो सखा पठयो सुधि ल्यावन,  
अवगुन हमरे आनि तहाँ तें लगे वतावन ।  
मोमै उनम अन्तरो एकौ छिन भरि नाहिं,  
ज्यौ देखौ मो माहिं वै त्यो मैं उन्हीं माहिं ।

तरङ्गनि गारि ज्यो ॥ ७४ ॥

गोपी रूप दिखाय तवै मोहन बनवारी,  
ऊँधौं भ्रमहिं निवारि द्वारि मुख मोह की जारी ।  
अपनौ रूप दिखाय कै लीन्हों बहुरि दुराय,  
नन्ददास पावन भयो जो यह लीला गाय ।

प्रेम रस पुजनी ॥ ७

सकरसन = उलरामजी ।

२६—वर धानक = सुन्दर शोभा ।

२२—गन्धलुब्ध = सुगन्ध के लोभी ।

३८—मनि-मै सिंह-पीठि = मणिजटित सिंहासन ।

३६—कमनीय करनिका = सुन्दर पुष्पाकार छत्री ।

पुरन्दर = इन्द्र ।

४०—कौस्तुभ मनि = जो हीरा भगवान् विष्णु ( कृष्ण )  
वक्षस्थल पर पहनते हैं ।

उड = नक्षत्र ।

४१—अखिल अड व्यापी = ब्रह्माण्ड में व्याप्त होनेवाला ।

४३—पौगड = दस वष से सोलह वष तक की अवस्था ।

आक्रान्त = प्रभावित ।

४५—करग्यत = आर्घ्यपत्र करता है ।

४८—सुन्दर जराव = सुन्दर नइने की सामग्री, बुन्दन ।

५०—अवर = घने, अधिकता से ।

छपा = रात ।

५१—उदराज = चन्द्रमा ।

नागर नायक = चतुर नायक ।

५३—कु  
के बीच से ।

गन्त ।

१२—सुदेम = सुन्दर ।

जुव = युवा ।

१३—गूढ़ जानु = रहस्यपूर्ण जघाण ।

१४—मकरन्द = पुष्परस ।

१५—मधुकर-निकर = भौरा का समूह ।

दुरि = छिपकर ।

दिनमनि = सूर्य ।

धुमडि-धुरि = तेज़ी से घिरकर ।

१६—लोक शोक = ससार-क्षेत्र, सम्पूर्ण ससार ।

विभानर = सूर्य ।

१७—श्रद्धियार गार = अधकार की गुफा ।

१८—श्रमित गति = जिसकी गति की सीमा नहीं ।

निगम-सार = वेदशास्त्र का सार ।

सुकसार = गुरुदेव का पूर्ण ज्ञान ।

१९—पञ्चप्राण = प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, ये पाच प्राण हैं ।

२०—चिद्घन = चैतन्यस्वरूप ।

२१—नग = पहाड़ ।

विरध = वृक्ष इत्यादि ।

२४—श्रविरद्धि = विरोध-रहित होकर ।

हरि = सिंह ।

२५—सन्त = सुन्दर ।

श्रोभा = आभा, धृप ।

श्रॉन = अन्य ।

२६—श्रू विलसति = भृङ्गुटि विलास से ।

विभूति = ऐश्वर्य ।

२७—अनन्त = शेषनाग ।

सकरसन = उलरामजी ।

२६—यर धानक = सुन्दर शोभा ।

३२—गन्धलुध = सुगन्ध के लोभी ।

३८—मनि-मै सिंह-पीठि = मणिजटिल सिंहासन ।

३९—कमनीय करनिका = सुन्दर पुण्यान्तर छत्री ।

पुरन्दर = इन्द्र ।

४०—कौस्तुभ मनि = जो हीरा भगवान् विष्णु ( कृष्ण ) अपने वक्षस्थल पर पहनते हैं ।

उड = नक्षत्र ।

४१—अखिल-थड व्यापी = ब्रह्माण्ड में व्याप्त होनेवाला ।

४३—पौगड = दस वय से सोलह वय तक की अवस्था ।

धाक्रान्त = प्रभावित ।

४६—करवत = आकर्षित करना है ।

४८—सुन्दर जराय = सुन्दर बडने की सामग्री, कुन्दन ।

६०—अवर = घने, अधिकता से ।

छपा = रात ।

६१—उदराज = चन्द्रमा ।

नागर नायक = चतुर नायक ।

६३—कुज रन्ध्रन = कुजा के बीच से ।

वितन = विस्तृत, उडा ।

६४—उम्कत है = प्रेमपृच्छ उचक कर भाँकना ।

६७—वामविलोचन = सुन्दर उदात्तपूर्ण नेत्र ।

५८—परप्यो = स्पर्श किया, ग्रहण किया ।

५९—तरनि किरन = गृह विरण ।

पम्बान = पापाण, पत्थर ।

सूर्यकान्तमणि = वह मणि जिसमें गृहविरण से अति प्रकट होनी है ।



- १६—मुख-सनस = मुख म सने हुए ।  
 २०—गहवर = गनी ।  
 २२—तनर्म = तन्मय, तल्लीन ।  
 २४—बनि आयनि = रूप धरना, मोहकता ।  
 २६—अरिदर = गदा ।  
 ३०—जोजत = ध्यान करते हैं ।  
 ३२—परम कात = प्रियतम, परम सुन्दर ।  
 ३४—बिलोलै = बिलोली शीशा ।  
 ३६—तरक कर = मोचनिचार कर पृथ्वी-बताती हैं ।  
 ४२—धर = धरा पर, पृथ्वी पर ।  
 ४३—मानिनि तनु कावै = राधा का स्वरूप धर लिया ।  
 ४४—वासि कानि = कहा हो, कहा हो ।  
 बदति = रहती है ।  
 ४८—धम कन = पसीने की बूद ।  
 ४६—लोल रद जूद = सुन्दर दाता के चिह्न, जो चुम्बन के समय  
 कपोलों पर हुए हैं ।  
 ५०—अहुरि-अहुरि = लाटकर ।  
 लाद लदाई = प्यार किया था ।

### तीसरा अध्याय

- १—अवधि भूत इन्द्रिग अलकृत = लक्ष्मी जा चंचला आती जाती  
 रहती है, वह भी सदैव के लिए यहाँ नम रही है ।  
 ३—नैन मूदिषी = आग्निचिन्ता ।  
 हासी फासी = मुसकान की पांसी ।  
 ७—सिल = रक्त रत्नर ।  
 ८—प्रनत-सनोरथ = शीत सुविषो के मनोरथ ।  
 १०—वनी वनन पर = राजीगम के गतां पर ।



६३—गुणमय मरीर प्रम = त्रिगुणात्मक माया के पश होकर ।  
मच्या = संचित ।

पच्यौ नाहिं रस = ब्रह्मानन्द-रस का प्रभाव नहीं हुआ ।

६५—रचक = थोड़ा सा ।

परिरभ = ग्रालिगन भेट ।

७०—यिलुलित = लटकती हुई ।

७३—राका-मयक = पूर्णिमा का चन्द्र ।

८०—सुरलभ = देवताया को प्राप्त होनेवाली ।

८१—ओपी = मनी हुई ।

८४—अरवरै = टफटकी लगाये हुए, दफटक ।

८५—वक चर्हान = साँकपन की रुचि ।

६४—अलक-अलिन के भार = अलकों के भारों के भार से ।

११३—गौहन = फासनेवाला ।

११४—चौप = उत्सुकता ।

११७—धूधरी = धुधली ।

११८—पूटे = लहरें ।

१२०—पुलिन = किनारे ।

१२१—छिलछिल = छिछला, उथला ।

१२०—वरधन = वदाना ।

## द्वितीय अध्याय

२—पुट = छलना रँग ।

७—मनमूँसे = मन को चुराये ।

६—कस्यीर = कसोदा ।

१०—दुग्ग-अन्दन = दुग्ग नष्ट करनेवाले ।

१२—दहदहे = आस भरे हुए ।

१५—उतग = ऊँचा ।

- १६—सुख-मनस = सुगम म सने हुए ।  
 २०—गहवर = घनी ।  
 २२—तनर्म = तन्मय, तल्लीन ।  
 २४—यनि आयनि = रूप धरना, मोड़कता ।  
 २६—अरिदर = गदा ।  
 ३०—जोजत = ध्यान करते हैं ।  
 ३२—परम कात = प्रियतम, परम सुन्दर ।  
 ३४—विलोलै = विलोरी शीशा ।  
 ३६—तरफ करै = सोचविचार कर पूछनी-बताता हैं ।  
 ४२—धर = धरा पर, पृथ्वी पर ।  
 ४३—माननि-तनु काँछै = राधा का स्वरूप धर लिया ।  
 ४४—कासि कासि = कडा हो, कडा हो ।  
 बदति = रहती है ।  
 ४८—मम-फन = पसीने की बूद ।  
 ४९—लोल रद ब्रद = सुन्दर दाता के बिन्दु, जो चुम्बन के समय  
 कपोलाँ पर हुए हैं ।  
 ५०—अहुरि-अहुरि = लौटकर ।  
 लाइ लडाइ = प्यार किया था ।

### तीसरा अध्याय

- १—अवधि भूत इन्दिरा अलकून = लक्ष्मी जो बचला आती जाती  
 रहती है, वह भी सदैव के लिए यहाँ रग रही है ।  
 ३—नैन-मूँदियौ = आँसुमिचीनी ।  
 हासी फाम्बी = मुसमान की पांखी ।  
 ७—सिल = चकड़ पत्थर ।  
 ८—प्रवत-मनोरथ = शीन टुलिया के मनोरथ ।  
 १७—पनी फनन पर = बानीनाम के पाँच पर ।

- १६—सैन यनै = धीर धीरे ।  
अटनी = भाड भाटाड़ ।  
वृण-कूप = तिनफो की नाकें ।  
२१—वितरही = प्रदान करता है ।

### चौथा अध्याय

- १—प्रेमसुधानिधि = प्रेमसुधा का समुद्र ।  
अलबल बोलें = प्रेमपूर्वक ढिठाई में रोचना ।  
२—दृष्टि-वन्द = नजरवन्दी ।  
नटवर = ऐन्द्रजालिक, मदारी ।  
३—मनमथ के मन-मथ = कामदेव का भी मन मथन करनेवाले ।  
४—घट = शरीर ।  
५—पटकी = दुपट्टी, उत्तरीय वस्त्र ।  
दौमन = शरीर में ।  
१२—दसनन = दातो में ।  
ताडति = प्रेम से सताती है ।  
१४—छादन = ओढ़नी, चीर ।  
छाह दयो है = बिछा दिया है ।  
१८—थम्वर = वस्त्र ।  
१९—ठमुराई = स्वामित्व, शासन ।  
२०—कमल-करनिका = कमल के अन्दर का कर्णफूल ।  
२२—भजते कौ भजै = भागते हुए का भजन करते हैं, नश्वर  
समार म लित है ।  
विनु भजते भजही = शाश्वत परब्रह्म का ध्यान करते हैं,  
जानी ।  
दोउन तजही = दोना का तजते हैं, भक्त लोग, सगुण उपासक  
२५—उरिनी = उमृण, उद्धार ।

## पचम अध्याय

- ३—तूल = भगटा भक्त ।  
 ४—कमल-चक्र पर = कमलानार चवूतरे पर ।  
 ५—एक काल = एक साथ ।  
 ६—रवनि = रमणी, थिरक थिरक कर नाचना ।  
 काई लई = प्रतिनिम्न पड़ते हैं ।  
 ७—स्यामा स्याम = राधाऽप्य ।  
 ११—जुरली = सम्मिलित ।  
 १२—मुरज = मृग ।  
 रली = मिल रही है ।  
 १३—चटकनि तारनि की = नाचते समय जो सितारे टूट टूट कर गिरते हैं ।  
 १६—मलकन = राँकी अदा में नाचना ।  
 १७—डलकनि = हिलना डुलना ।  
 १८—करतल फिरति = नर्तिका का एक नौतक विशेष ।  
 लडू होत निय = मन लडू होता है ।  
 २०—चौहि कैं = नौतक पूर्वक ।  
 २२—मुरली-मुर उरलि = रशी में अपना मुर मिलाकर ।  
 मुरली का छेकि = मुरली के स्वर से भिन्न स्वर करके ।  
 २३—दैं तँबोल दरि = क्षणिक चुम्बन करते समय कौतुक-वय पान की पीक लगा पर ।  
 २७—मुरि = लचक कर ।  
 २८—मडल डोलनि = मडलानार नाचना ।  
 "ता धेई" डोलनि = रागप्रीति म गान का एक सुन्दर शब्द-विशेष ।  
 २९—छेकि = स्वर में स्वर से भिन्न सुन्दर ।

- ३१—सुरभे = पीके पट गये ।  
 ३७—धूधरि = मुश्राधार ।  
 ३८—लटक = उत्साह प्रयत्न ।  
 ४०—रति अविद्वद् बुद्ध = अनुकूल सुरति-सभाम ।  
 ४३—धारि धर = पृथ्वी पर ।  
 ४५—डगरी = माग की ओर ।  
 ४७—धीडन = लजाने वाले ।  
 ४८—सरगजी माल = कुम्हलाया हार ।  
 मलकति = गम्भीर और धीमी सी सुन्दर गति ।  
 ४९—करनी = हथिनी ।  
 ५५—दुरि-सुरि = अदा के साथ लुक छिपकर ।  
 ५६—तन-असन = शरीर में लिपट कर ।  
 ६१—प्रकृति नाम = प्रकृतिरूपी रमणी, माया ।  
 धरि धरि = धड धड ।  
 ६५—ब्रह्म-सुहूरत = उपासाल ।  
 ७२—विषै-विदूषित = विषय विकार से दूषित ।  
 ७५—हीनसुद्ध = जिनमें श्रद्धा नहा ।  
 धरम-बहिर मुत्प = धम की ओर जिनकी रुचि नहा ।  
 ७८—सप्तनिधि भेदिनि = सात समुद्रों को भेदने वाली ।  
 धारहि धार रमत = महज में पार हो जाते हैं ।
-

# टिप्पणी-२

## भैरवगीत

- १—प्रेम धुजा = प्रेम ध्वजा, प्रेम को ऊचा उठानेवाली ।  
स्याम विलासिनी = कृष्ण में ही सुख मानने वाली ।
- २—सकेत = एतन्त स्थान ।  
मधुपुरी = मधुरा जी का प्राचीन नाम ।
- ३—कठ घुटे = गला भर आया ।  
व्यवस्था = नियम, विधान ।
- ४—अर्घामन = अर्घ देकर आमन देना ।  
बलवीर = बलदाऊ जी ।
- ५—राम = बलराम जी ।
- ६—अग आवेम = रोमाञ्च, प्रेमाकुलता ।  
प्रबोधही = होश में लाते हैं ।
- ७—अगिल विन्ध भरपूरि = “सर्वं कल्पिद ब्रह्म । नानूर्णं मम  
ब्रह्ममय है ।
- ८—अगोरी = मोहित करने वाली शक्ति, जादू ।
- ९—सगुन = सत्त्व, रज और तम, इन तीनों गुणों में पुनः माया  
त्वम्प ।  
उपाधि = विनासगुण ।  
निगुन = सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों में पर ।

निलेंप = जो किसी से लित नह।

अच्युत = जो कभी च्युत न हो, अर्थात् अविनाशी।

१०—हुतो = था।

११—अड = पृथ्वीमडल।

ब्रह्मड = सम्पूर्ण विश्व, जिसके भीतर सभी लोक हैं।

जाता = उत्पन्न हुआ है, विनाश होता है।

लीला-गुन = लीला करने के लिए।

जोग-श्रुति = योग-साधन से।

परब्रह्म पुर धाम = ब्रह्मपद, परम धाम।

१२—ईस = शक्र।

धूरि-क्षेत्र = पृथ्वी, समार।

लोक चतुर्दस = चौदह लोक, भूलोक, भुवनाक, स्वर्लोक,  
महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक, अतल,  
पितल, सुनल, तलातल, महातल, रमातल और  
पाताल।

सप्तदीप = सप्तद्वीप, जबू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रोच, शार  
और पुष्कर।

असड = भरत, इलाबूत, त्रिपुरक, भद्र, त्रेतुमाल, हरि,  
हिरण्य, रम्य और कुश।

१३—कर्म-अधिकारी = कर्म फिलासफी के ज्ञाता, न्यग्य से सनाम  
भक्त।

कर्मबद्ध × × जीव विमुक्त = सम्पूर्ण जीव कर्म म फँसकर  
ही भगवान से विमुक्त होने हैं।

१४—कर्म के साथ ही पाप पुण्य आ जाता है और पाप पुण्य  
दोनों ही लोहे और मोने की वेडी हैं—वेडी चाहे मोने ही की  
हो, आखिर पैरो के लिए नवन तो वह भी है  
है कि उस कर्म से स्वर्ग मिलता है और नीन।

पर गाल्व म 'प्रेम' (निष्काम भक्ति) के बिना तो इस विषयवासना-रोग म पच पच कर मरना ही है ।

१७—मायुष्प = भगवान् म लीन होना ।

१८—योगी ज्यानि ना ध्यान करते हैं, पर भक्त निज स्वरूप ना जानता है—यह अपने अन्दर ही प्रेमापीयूष को प्रकट कर क श्यामली मलोनी मूर्ति को हृदय म धारण करता है । निर्गुण म तो यड़ा रखेड़ा है—उसका कोई भी लक्षण यदि हम आगे धरें, तो लोगो को सतोष नहीं होता । अर धर में आया हुआ । ( हमारा श्याम सुन्दर स्वरूप )—इसकी हम पूजा न करें—घर में आया हुआ नाग हम न पूज और नाबी ( निर्गुण ) को पूजने जायें ! ऐसी मूर्तियाँ कीज करगा ?

१९—नेति = वेदो में 'नेति', 'नेति' ऊपर परब्रह्म का परिचय दिया गया है—अर्थात् 'यह नहा है', 'यह नहीं'—अर्थात् जितना कुछ नाम, रूप और गुण है, उससे यह पर है ।

२०—हित रूपै = सगुण ना महत्त्व ।

करतल आमलक = हथेली पर रगे हुए आंगुले के समान ।

२१—बागे = बल ।

२०—विडराति फिरति = व्याकुल घूमती हैं ।

२४—ब्याल अमल विष उवाल तें राखि लये सब ठौर—कालीनाग के विष तथा दावानल इत्यादि सब से रक्षा की थी ।

कालीनाग की कथा—यमुना में एक कुण्ड था जिसमें कालीनाग रहता था । उसके विष की अग्नि से कुण्ड का जल सदा तप्त विषयुक्त रहता था । जो जीव भूले भटके भी उस कुण्ड के निचट चले जाते थे, कुण्ड के जल की विषैली भाफ से मर जाते थे । श्रीकृष्ण-चन्द्रजी अपने गालगाल के साथ एक दिन यमुना के तट पर जाकर गद गेबने लगे । उन्होंने खेल में ही भिन्न श्रीदामा की ग



कालीदह में फेर दी। जब श्रीदामा गेंद के लिए कृष्णजी स भगटन लगे, तब वे कालिया-कुण्ड में वृद्ध पडे। वहाँ पर भगवान् कृष्णचन्द्र जी तथा कालीनाग में युद्ध हुआ। भगवान् उछलकर उस महा विष धर नाग के पन पर चढ गए। उनके योद्ध से उसका अंग प्रत्यङ्ग ढोला हो गया और अन्त में वह पराजित हो गया। कालीनाग की यह कथा श्रीमद्भागवत पुराण में श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित के पृच्छने पर कही है।

दावानल की कथा—एक बार श्रीकृष्णचन्द्र जी उलराम तथा अन्य गालगाला सहित गायों को चराते हुए मुजवन में जा पहुँचे। वहाँ वन में दावाग्नि लग जाने के कारण सब लोग व्याकुल हो उठे। जब अग्नि प्रतिक्षण प्रचण्डरूप धारण करती गई तो उलराम सहित ममस्त गालगाला ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी से रक्षा की प्रार्थना की। मित्रा की कातर वाणी सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कहा, “मित्रो! भयभीत मत हो, अपनी अपनी आँस मीच लो।” यह सुनकर सब ने अपने अपने नेत्र मूद लिए। भगवान् उस भयकर अग्नि को पान कर गये, और अपने मित्रों की रक्षा की। यह कथा भी श्रीमद्भागवत पुराण में है।

३२—पूतना = एक राक्षसी थी जो कस के भेजने से गालगाला श्रीकृष्ण को मारने के लिए गोकुल गई थी। अपने स्तना पर उसने विष लगा लिया था जिससे श्रीकृष्ण वृद्ध पीकर मर जायें। गालकृष्ण पर इसका कुछ भी प्रभाव न पडा। उन्होंने उसका सारा रक्त चूमकर उस मार डाला।

३६—ताडका = एक राक्षसी थी जिसे विश्वामित्र जी की यज्ञ-रक्षा करते हुए श्रीरामचन्द्र जी ने मारा था।

३७—इक्षीजित = स्त्री के द्वारा जीता हुआ, स्त्री के यश।

सूपनखा = यह प्रसिद्ध राज्ञी रावण की गृहिणी थी। भगवान् रामचन्द्र जी के वनवास-काल में राम से पीड़ित होकर वह उनसे विवाह करने गई थी। वहाँ राम के सकेत से श्रीलक्ष्मण जी ने उनका नाक कान काट लिए थे।

३८—राजा बलि = यह विरोचन का पुत्र तथा प्रह्लाद का पौत्र दैत्या का राजा था। भगवान् विष्णु ने वामन अवतार लेकर इनसे समस्त पृथ्वी दान में ले ली और इन्हें पाताल भेज दिया।

वामन की कथा—अपनी उम्र तपस्या के फल से दैत्य राज बलि स्वर्ग का स्वामी बन गया। इसने देवताओं के राजा इन्द्र की माता अदिति को बड़ा परितोष हुआ। उसने महायज्ञ के लिए प्रजापति कश्यप से प्रार्थना की। कश्यप ने उसे भगवान् रामदेव की आराधना के लिए एक व्रत करने की सलाह दी।

अदिति ने कश्यप के आशानुसार नियम पूरक व्रत का अनुष्ठान किया। तब भगवान् विष्णु ने प्रसन्न होकर अदिति के यहाँ वामन रूप में जन्म लिया। यथासमय वामन के जातकर्म तथा उपनयनादि सम्कार किए गए। एक दिन वामन ने मुना कि दैत्यराज बलि ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया है। उस समय के ब्राह्मण का स्वधारण करके बलि के पास गए और उसमें केवल तीन पैग भूमि की याचना की। दैत्य-गुरु शुक्राचार्य के मना करण पर भी बलि ने वामन भगवान् को भूमि देना स्वीकार किया। इसके पश्चात् देवत देवत वामनदेव का शरीर आश्रय करने के रूप में बढ़ गया। दायाँ पैर से ता उन्हाने पृथ्वी और स्वर्ग प्राप्त किया और तीसरा पैर बलि के मस्तक पर रखकर उसे रांध लिया। अन्त में भगवान् वामन ने राज बलि को पाताल भेज दिया और स्वर्ग का राज्य इन्द्र को प्रदान किया।

३६—हिरण ऋषयः = हिरण्यकश्यपः प्रसिद्ध विष्णु विरोधी तथा दैत्यों का राजा था। भक्त प्रह्लाद इन्हीं के पुत्र थे। भगवद्भक्ति के कारण वह प्रह्लाद को बहुत कष्ट देता था। अन्त में भगवान् ने नृसिंह अवतार लेकर इमका वध किया।

नृसिंह अवतार की कथा हरिवंश पुराण, भागवत तथा विष्णु-पुराण में मिलती है। भागवत में लिखा है कि हिरण्यकश्यप उर प्राप्त कर बहुत प्रसन्न हुआ और स्वर्ग आदि लोकों को जीतकर राज्य करने लगा। उसके चार पुत्र थे, निम्न प्रह्लाद विष्णु के परम भक्त थे। एक दिन हिरण्यकश्यप ने परीक्षा के लिए सब पुत्रों को अपने सामने उलाया और कुछ सुनाने के लिए कहा। प्रह्लाद विष्णु भगवान् की मूर्ति गाने लगे। इस पर दैत्यगण बहुत विगडा। किन्तु इमका कुछ भी परिणाम न हुआ। प्रह्लाद की भक्ति दिन पर दिन अधिक होती गई। एक दिन हिरण्यकश्यप ने कुपित होकर प्रह्लाद से प्रछा— “तू जिसके चल पर इतना कूदता है ?” प्रह्लाद ने कहा, “भगवान् के, जिसके चल से यह सारा मसार चल रहा है।” हिरण्यकश्यप ने प्रछा, “तेरा भगवान् कौन है ?” प्रह्लाद ने कहा, “वह सर्वज्ञ है।” दैत्यराज ने दौंते पीमकर प्रछा, “किस इस स्वमे में भी है ?” प्रह्लाद ने कहा, “अवश्य।” हिरण्यकश्यप गद्ग लोकर स्वमे की ओर क्रोध भरी दृष्टि में देखने लगा। इतने में नृसिंह स्वप्न पाटकर निकल आए और दैत्यराज का वध किया।

४०—परशुराम = परशुराम जी उड़े क्रोधी ब्राह्मण थे। साथ ही पितृभक्ति की भी उनमें परामाणा थी। यहाँ तक कि अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए ही उन्होंने अपनी माता रेणुका तक का वध कर डाला था। क्षत्रियों से इनका वैत्रण मेर था। इसलिए इक्ष्वाकु वार इन्होंने क्षत्रियों से भयकर सन्नाह करके पृथ्वी को क्षत्रियरहित कर दिया था। इनकी कथा इस प्रकार है —

श्रीपरशुराम जी त्रिष्णु के छठे अवतार माने जाते हैं। उनके पिता का नाम यमदग्नि ऋषि तथा माता का नाम रेणुका था। एक दिन माता रेणुका नदी में स्नान करने के लिए गईं। वहाँ गार्धराज विनरथ का अपनी स्त्री के साथ जलक्रीडा करते देखकर उन्नी कामवासना उदीम हो उठी। जब वह घर लौगी तो उसी दशा देखकर यमदग्नि ऋषि अत्यन्त क्षुब्ध हुए। उन्होंने अपने चारों पुत्रों को एक एक करके रेणुका के वध की आज्ञा दी, किन्तु स्तब्धवश कोई वह निर्दय कार्य न कर सका। इतने में परशुराम या पहुँचे। महर्षि ने उन्हें भी आज्ञा दी। पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर परशुराम ने माता का शिर काट डाला। यमदग्नि ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने आज्ञाकारी पुत्र से वर माँगने के लिए कहा। परशुराम ने कहा, “सबप्रथम तो आप मेरी माता को जिला दीजिए और इसके पश्चात् यह परदान दीजिए कि युद्ध में मरे मामले में कोई हानि न करे।” ऋषि ने अपने पुत्र को दोना वर प्रदान किये।

एक दिन राजा सहस्रार्जुन यमदग्नि ऋषि के आश्रम पर आये। वहाँ पर रेणुका का छोड़कर को दूसरा न था। राजा ने आश्रम के पेड़ पोधा को उजाड़ डाला और ऋषि की नामधेनु के पछुटे का हरण करके वहीं से चला गया। परशुराम को जब यह समाचार मिला तो उन्होंने अपने परसे से सहस्रार्जुन की हजारों भुजाएँ अपने पटंगों में इस प्रकार काट डाली जैसे कोई वृक्ष की शाखाओं को बाट-छाँट डाले। इसके पश्चात् प्रतिहिंसा रूप में सहस्रार्जुन के कुटुम्बिया ने एक दिन यमदग्नि को भाग डाला। परशुराम पितृ-वध का समाचार सुनकर अत्यन्त दुःखी हुए और उन्होंने सम्पूर्ण क्षत्रियों के नारा की प्रतिज्ञा की। इसी प्रतिज्ञा के पालन करने के लिए उन्होंने क्षत्रियाँ का दक्षिण चार सहार किया था।

पेये अपने पित्र = तर्पण कर अपने पिता का सन्तुष्ट किया।

४१—सिसुपाल = शिशुपाल चेदि देश का उदा अभिमानी राजा था। भगवान् श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में इसका उध किया। कथा इस प्रकार है—त्रिदर्भ देश के राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी अत्यन्त रूपवती थी। वह हृदय में श्रीकृष्ण को ही चाहती थी, परन्तु मगध के राजा जरासन्ध की सलाह से भीष्मक अपनी कन्या का विवाह चेदि देश के राजा शिशुपाल से करना चाहता था। जब विवाह का समय आया तो रुक्मिणी ने भगवान् कृष्ण को पत्र लिखा कि अब इस सन्ध से आप के सिपाय अन्य कोई मेरा छुटकारा करने वाला नहा है। कृष्ण जी उलराम के माथ जा पहुँचे। विवाह से एक दिन पूर्व रुक्मिणी इन्द्राणी का पूजन करने गई। उपयुक्त अवसर देखकर श्रीकृष्ण भी वहाँ पहुँच गए और रुक्मिणी को अपने स्थ पर बैठाकर वहाँ से चल दिए। जब शिशुपाल आदि राजाओं को यह समाचार मालूम हुआ तो वे युद्ध करने के लिए आ पहुँचे। श्रीकृष्ण ने उन सब को पराजित किया और रुक्मिणी को अपने महलों में लाकर विधि पूर्वक उमने साथ विवाह किया। इस पर शिशुपाल कृष्ण से द्वेष करने लगा। परन्तु कृष्ण जी की बुद्धि का यह लड़ना था। अतएव वे बराबर क्षमा करते गये। अन्त में धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जब शिशुपाल का द्वेष चरम सीमा पर पहुँच गया, तब भगवान् कृष्ण ने सुदर्शनचक्र से उसका सिंग उड़ा दिया।

४३—तिमिर भाव आवेस = अपनी अज्ञानता पर।

४७—मसिहारे = माले।

लायो जोग भुवग = योग का माय ले आया। इस पत्र से गोपिकाओं ने भैरव को सम्वाधन करके श्रीकृष्ण और

उद्वय दोना पर छाँटा फसने गुरू निये हैं । भँवर,  
उद्वय और श्रीगुण—तीना को एक रूप माना है ।

१०—द्विविध ज्ञान = निगुण सगुण का भेद, क्योंकि गोपिकाएँ  
अभेद भक्ति मानती हैं ।

१४—सया = पाठ ।

जोग चटसार = योग की पाठशाला ।

११—यस्तु विना गुण नाहि = अर्थात् जिम्मा कुछ अस्तित्व है,  
उसमें गुण अवश्य है । कोइ भी वस्तु निर्गुन नहीं  
कही जा सकती, और यदि निर्गुन मान भी लिया  
जाय, तो वह निराकार होने से सिर्फ अतीव ही  
ही वस्तु हो सकती है, परन्तु सगुण तो सम्पूर्ण  
दिव्य में बल्लू दिसाव दे रहा है ।

१६—हृती = यो ।

१७—कुपजा तीरथ = गोपियों कुपजा दासों को व्यग्र न  
श्रीगुण और उद्वय ( गुरू चेले ) का तीर्थ—यानी  
“तारनेवाला” पतलाती हैं और कहती हैं कि वहाँ  
जानर तुम लोगों ने इन्द्रियों का मेला लगाया  
है—चेले यागी लोग अपने इष्ट फ निरस्यपूर्ण  
ईश्वरों को एक ही वर वल्लीन करते हैं ।

१८—घीगुन गुन गहि लेत हैं = अगुण को गुण ही तरह प्रदान  
करते हैं ।

१९—घोरगी = चालाक, “मदन विभगी प्रापु है, की तिभं तै  
नार” —आप रूप तो कामदेव की तरह मुन्दर  
विभगी छवि करते हैं, परन्तु म्हा भी क्या हो रूर  
सूरत विभगी कुन्ना तुरही दागी माग पा है । पाह ।

गून ही जोड़ी अत्र वहाँ मधुवन में जाकर मिली है। गोकुल में तो कोई ऐसी “रूप, गुण, सील” वाली मिली नहीं।

६०—गोपियों के सामने भोरा तो एक निमित्तमात्र सम्बोधन के लिए रहा, परन्तु जो कुछ उन्होंने उलटना दिया, वह कृष्ण को स्मरण करके कहा, और उद्वेग पर भी व्यग्य तथा हास्य के रूप में बहुत कुछ डालती गईं। कई जगह तो उद्वेग को भी साक्षात् भ्रमर के रूप में ही सम्बोधित किया है। और उद्वेग आये भी ये श्रीकृष्ण की ही पोशाक करके, ऐसा श्रीमद्भागवत से प्रकट होता है। उद्वेग उड़े सरस रसग्राही कृष्णभक्त थे। इसीसे उनका एक नाम “मधुकर” भी है।

६६—उद्वेग स्वयं प्रपने आप कहते हैं कि प्रेम में किस प्रकार पागल होना चाहिए—यह शिक्षा आज मैंने यहाँ गोपियों से आकर प्राप्त की, और मेरा जो सगुण निर्गुण करके द्विनिघ ज्ञान था, वह आज यहाँ आकर मिट गया, और आज से प्रेम-रस का पान करके मैं सच्चा “मधुकर” बना।

७१—बँधी मुँठी = उच्चे मुँठी बाँधकर तिलवाड़ में परस्पर पृच्छते हैं, “तलाओ हमारी मुँठी में क्या है?” दूसरा उच्चा किसी वस्तु को ममकर कहता है कि यह है—इतने में मुँठी जतलाने वाला लड़का चट से अपनी मुँठी गोल देता है, तो वास्तव में उसमें कुछ नहीं निम्लता! इस पर सन लड़के हँस पड़ते हैं। वही उद्वेग श्रीकृष्ण से यहाँ पर कहते हैं कि—तुम उड़े करुणामय बनते हो, उड़े रसिक बनते हो, पर यह सन तुम्हारा मिथ्या आडम्बर मान है। तुम बँधी हुई मुँठी की तरह तिलबुल बने हुए—छूँ छे

हो—जब तब तुम को भीतर से न, देखा जाय, तभी तब तुम्हारा वह भूटा आडम्बर है। भेद खुल जाने पर तुम म कुछ भी नहीं है।

७३—उद्वेग की बातें सुनकर भगवान् कृष्ण की दोना आंग भर आई। गोपिया के प्रेम में वे इतने मग्न हो गये कि उन्हें कुछ भी सुधबुध नहा रह गई। उनके श्यामले शरीर म रोमाञ्च हो आया, तो उनका एक एक रोम गापिका उन गया। उनका सावला शगर तो मानो कल्पवृक्ष हुआ, और उनके अग अग से ब्रज रनिताएँ मानों पत्ता की तरह पूट पड़ीं !

७५—“डारि मुख मोह की जारी”—समोहन विद्या में मुख के ऊपर ही जादू डाली जाती है, निचका समाझ पर अगर होता है। “जारी” से अभिप्राय यहाँ “जाल” या जादू से है।

---



मुद्रक—भगवतीप्रसाद वाजपेयी, लक्ष्मी आर्ट प्रेस, दारामञ्ज, प्रयाग ।

# तरुण-भारत-ग्रन्थावली

साहित्यिक और स्वास्थ्य-सम्बन्धी पुस्तकें, जो प्रत्येक पढ़ेलिखे घर में रहनी चाहिए ।

( १ ) कालिदास और उनकी कविता—लेखक आचार्य महावीर-प्रसाद जी द्विवेदी । यदि आप महाकवि कालिदास के समय के भारतवर्ष की संरचना चाहते हैं, यदि आप कालिदास की कविता की मार्मिक आलोचना पढ़ कर उसका स्वादान करना चाहते हैं, तो आचार्य द्विवेदी जी का यह ग्रन्थ अत्यन्त मंगाकर देखें । मूल्य १) ६० ।

( २ ) सुभाषित और विनोद—लेखक प० गुरुनारायण जी सुजुल । साहित्य की अनुपम छटा के साथ सुकविपूर्ण हास्य विनोद-सम्बन्धी यह एक अनुपम ग्रन्थ है । इसमें हजारों ऐसे हास्यविनोद-युक्त चुटकुले दिये गये हैं, जिनको पढ़ कर केवल आप का मनोरंजन ही नहीं होगा, बल्कि आप का चातुर्य और ज्ञान भी बढ़ेगा । स्त्रियों और बच्चों के लिए तो बहुत ही उपयोगी है । मूल्य १॥) ६० ।

( ३ ) भावविलास—टीनार प० लक्ष्मणनिधि जी चतुर्वेदी साहित्य-रत्न । महाकवि देव का यह ग्रन्थ क्या काव्यसौन्दर्य की दृष्टि से, और क्या रीतिग्रन्थ की दृष्टि से, हिन्दीसाहित्य में बहुत ही ऊँचे दर्ज का माना जाता है । हमने इसकी नवीन आवृत्ति सजिन्द सटीक और अथसहित निकाली है । देवकवि की कविता का चमत्कार देखना हो, तो इस ग्रन्थ को देखिये । मूल्य १॥) ६० ।

( ४ ) साहित्यसीकर—लेखक आचार्य महावीरप्रसाद जी द्विवेदी । इस ग्रन्थ में द्विवेदी जी के कई उपयोगी साहित्यिक निबन्धों का संग्रह है । यह ग्रन्थ हिन्दीसाहित्य-सम्मेलन तथा पञ्जाब की शास्त्री परीक्षा में भी पढाया जाता है । हिन्दो और संस्कृत साहित्य का मार्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए इस ग्रन्थ को अत्यन्त पढना चाहिए । मूल्य १) ६० ।

( ५ ) साहित्यसुपमा—सम्पादन ५० नन्ददुलारे काजपेयी एम०

-----

$$y = \sum_{k=0}^{\infty} \frac{1}{k!} \left( \frac{d}{dx} \right)^k f(x) = e^{\frac{d}{dx}} f(x)$$

-----

# तरुण-भारत-ग्रन्थावली

साहित्यिक और स्वास्थ्य-सम्बन्धी पुस्तकें, जो प्रत्येक पढ़ेलिखे घर में रहनी चाहिए।

(१) कालिदास और उनकी कविता—लेखक प्राचाय महाशय प्रसाद जी द्विवेदी। यदि आप महाकवि कालिदास के समय का भारत की तरफ से आलोचना पढ़ कर उसका रसाम्बादन करना चाहते हैं, तो आपका दिनेदी जी का यह ग्रन्थ अवश्य मँगार देयें। मूल्य १) ६०।

(२) सुभाषित और विनोद—लेखक प० गुरुनारायण जाधव। साहित्य की अनुपम छटा के साथ सुकविपूर्ण हास्य विनाद-सम्बन्धी एक अनुपम ग्रन्थ है। इसमें हजारों ऐसे हास्यविनोद-सुक सुकवि विनोद हैं, जिनको पढ़ कर आप का मनोरजन ही नहीं होगा, बल्कि आप का चातुर्य और ज्ञान भी बढ़ेगा। नियो और यहाँ के लिए तो यह ही उपयोगी है। मूल्य १॥) ६०।

(३) भागविलास—टीकाकार प० लक्ष्मणानिधि जी चतुर्वेदी साहित्यिक। महाकवि देव का यह ग्रन्थ नया कान्यमन्दय की दृष्टि से, और नैतिकग्रन्थ की दृष्टि से, हिन्दीसाहित्य में बहुत ही ऊँचे दर्जे का मान्य है। हमने इसकी नयी आवृत्ति सतिलक सटीक और सजीव की है। देवकवि की कविता का चमत्कार देखना हो, तो आप को देखिये। मूल्य १॥) ६०।

(४) साहित्यसूचक—लेखक प्राचाय महाशय प्रसाद जी द्विवेदी। ग्रन्थ में द्विवेदी जी के कई उपयोगी साहित्यिक निबन्धों का संग्रह है। यह ग्रन्थ हिन्दीसाहित्य-सम्मेलन तथा पत्रों की शान्धी बनाने में बहुत उपयोगी है। हिन्दी और संस्कृत साहित्य का विकास करने के लिए इस ग्रन्थ को अवश्य पढ़ना चाहिए।

(५) साहित्यसुपमा—सम्पादक प० नन्ददुलारे

ए० श्रीर ५० लक्ष्मीनारायण जी मिश्र । काव्य, नाटक, उपन्यास, प्रहसन, इत्यादि साहित्य के भिन्न भिन्न श्रेणियों पर हिन्दी के धुरन्धर विद्वानों के लिये हुए विद्वत्तापूर्ण निबन्धों का ऐसा सुन्दर संग्रह हिन्दी में दूसरा नहीं है । वर्तमान काल के सभी साहित्यकारों के विशेष विशेष निबन्धों का इसमें समावेश हुआ है । पुस्तक सजिल्द है । मूल्य १।।) ५० ।

( ६ ) गौराशदल की कथा—जटमल कवि का यह प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ सन् १६८० की रचना है । मेराड की रानी पद्मावती की सतीत्व-रत्ना के लिए गारह वष के बादल ने किस प्रकार की वीरता, साहस, चातुर्य और युद्धकौशल दिखाया, इसकी वीरगाथा श्रीजस्विनी कविता में गाई गई है । प्रो० रामजुमार जी वमा एम० ए० ने विद्वत्ता-पूर्ण भूमिका लिखी है । मूल्य १=) आने ।

( ७ ) निशीथ—लेखक “कुमारहृदय” । हिन्दी में यह एक ऐसा मौलिक और साहित्यिक सामाजिक नाटक निकला है, जो स्टेज पर बड़ी सुविधा के साथ खेला जा सकता है । कथानक बहुत ही रोचक और सुकविपूर्ण है । भाषा का प्रवाह, भावों का तारतम्य, कल्पना की ऊँची उड़ान देखने योग्य है । गद्यकाव्य का पूरा पूरा आनन्द उठाना हो, तो इस रूपक को मँगाकर पढ़िये और खेलिये । मूल्य १।।) आने ।

( ८ ) गुजरात की वीराङ्गना (सरदार-वा नाटक)—लेखक “कुमार हृदय” । गुजरात की एक मनोहर ऐतिहासिक घटना को लेकर इस दृश्यकाव्य की रचना की गई है । देशप्रेम और वीररस से भरा हुआ आदर्श क्षत्रिय वीराङ्गना का पवित्र चरित्र इतने चातुर्य से चित्रित किया गया है कि देखते ही बनता है । नाटक स्टेज पर खेलने योग्य है । मूल्य सिर्फ १।।) आने ।

( ९ ) निश्वास—लेखिका श्रीमती रामजुमारी चौहान । रामजुमारी जी की कविताएँ करुणरस से ऐसी सरसोर होती हैं कि पढ़नेवाले का हृदय भर आता है । छायावादी ढंग की कविताओं में इनका एक

विशेष स्थान है। इसी ग्रन्थ पर नागपुर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अगसर पर ५००) ६० का सेंटमरिया महिला-साहित्यिक लेखिका का मिला है। मूल्य ॥=) ग्राने।

(१०) अचना—लैफ्टर ठाकुर चन्द्रभानुसिंह जी। ठाकुर साहय हिन्दी के एक बहुत ही होनहार और उदात्तमान कवि हैं। आपकी कविताओं में वह माधुर्य, वह रस, वह श्रोत्र और वह मान प्राप्त है कि पाठक के चित्त में उलाहल हरण कर लेता है। आपकी कविताओं में प्रकृति-सुषमा का दार्शनिक चित्रण बहुत ही अनोखे ढंग में रहता है। डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर तब ने आपकी कविताओं को पसंद किया है। पुस्तक सजिल्द है। मूल्य १॥) ६०।

### ग्रन्थावली की अन्य पुस्तकें

१—प्राणायाम-रहस्य	१॥)	१३—मचिन दिलो	
२—गार्हस्थ्यशास्त्र	१)	१४—अपना सुधार	॥)
३—धमशिक्षा	१)	१५—महादेव गोविन्द गाँगे	॥=)
४—सदाचार और नीति	॥)	१६—इच्छाशक्ति के चमत्कार	॥)
५—हृदय का नाश	१॥)	१७—हमारा स्वर	१)
६—त्रिपुरा पूज	१॥)	१८—उप वान	१)
७—पूजवाली	२)	१९—मान के रोग और चिरित्ता	१)
८—जीवन का मूल्य	१॥)	२०—साम्यवाद के सिद्धान्त	॥)
९—जीवन के चित्र	१)	२१—दयालु माता	॥=)
१०—हमारे उच्चे	१)	२२—मद्गुणी पुत्री	॥=)
११—भोजन और न्याय पर म० गाँधी के प्रयोग	॥)	२३—बचा की सन्धि कदा	॥=)
१२—प्रसन्नचय पर म० गाँधी के अनुभव	॥)	पॉन भाग मू०=	
		२४—वेदान्त रहस्य	॥)

मिलने का पता—  
तस्म-भारत-ग्रन्थावली-कार्यालय,

“मङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक”-द्वारा सम्मानित ग्रन्थ

सचित्र

# आहारशास्त्र

[ लेखक—आयुर्वेद-पञ्चानन प० जगन्नाथप्रसाद  
जी शुक्ल, मिपट्मणि ]

इस पुस्तक में भिन्न भिन्न खाद्य, उनके रासायनिक मिश्रण, पचन-क्रिया का वैज्ञानिक विवेचन, विटामिन का इतिहास और भिन्न भिन्न पदार्थों में उसके परिमाण का निर्णय और आयुर्वेद से उसका समन्वय; दुग्धाहार, फलाहार, मांसाहार, शाकाहार की तुलनात्मक मीमांसा, ब्रह्मचर्य, उपवास, यस्तिवर्ष, व्यायाम, स्नान इत्यादि भोजन के सहायक उपायों का आहार पर प्रभाव, षट्भेद, अथवस्थाभेद, देशभेद से आहार का विवेचन, अमीरों और गरीबों तथा अन्य अन्नभेद और श्रेणीभेद से यथोचित आहार का निर्णय, भोजन पकाने और अग्नि से अदृष्ट आहार की तुलनात्मक उपयोगिता, भिन्न भिन्न खाद्य द्रव्यों में मिलावट और उससे पचने के उपाय इत्यादि आहारसन्धन्धी सभी ज्ञातव्य बातों का पूरा पूरा विवेचन किया गया है। पुस्तक ३१ अध्यायों में समाप्त हुई है। आठ चित्र और अनेकों कोष्ठ-चित्र न्ये गये हैं। हिन्दी भाषा में यह ग्रन्थ थिलकुल अपूर्ण बना है। प्रत्येक गृहस्थ के घर इस पुस्तक की एक एक प्रति अक्षरय रहनी चाहिए। यदिवा कामज, सुन्दर छपाई।

मूल्य सिर्फ २) ५० है।

मिलने का पता

तरुण भारत-ग्रन्थावली, टारुगञ्ज, प्रयाग।

